विषय-सूची

लेखकों व प्रकाशकों से

संस्थान की प्रसिद्ध पत्रिकाओं,
हिन्दी मासिक
विश्वज्योति
एवं
संस्कृत त्रैमासिक
विश्वसंस्कृतम्
में अपनी रचनाओं व प्रकाशनों की समीक्षा प्रकाशित करने के लिए उन की दो-दो प्रतियां भिजवाइये

—सम्पादक

संस्थापक-सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य विश्वबन्धु

प्रबन्ध-सम्पादक :
श्री एस्. भास्करन् नायर

आदरी-सम्पादक :
श्री सन्तराम, बी. ए.

सम्पादक :
डॉ. वेदप्रकाश विद्यावाचस्पति,
शास्त्री, एम.ए., एम.ओ.एल.,
पी-एच. डी.

सहायक-सम्पादक :
श्री कुलदीपसिंह मन्हास,
एम. ए., एम. फिल.

सहायक (प्रकाशन) :
श्री पृथुराम शास्त्री

परामर्शक :
श्री देवदत्त शास्त्री विद्याभास्कर

प्रकाशक-वितरक :
विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-शोध-संस्थान,
होश्यारपुर—१४६ ०२१

वार्षिक मूल्य

भारत में : रु० २४
विदेश में : रु० ६०
एक प्रति का मूल्य : रु० २
भारत में आजीवन-सदस्यता-
शुल्क : रु० २५१ मात्र

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्—ऋग्०

होश्यारपुर

वर्ष ३३ } पौष, २०४१; जनवरी, १९८५ { संख्या १०

मनुः उवाच

वेद मानव-धर्म का मूल आधार हैं। उनका पढ़ना और जानना हमारा कर्तव्य है।

पर उस से भी अधिक आवश्यक है उनमें बतलाये धर्म पर आचरण करना। सत् आचरण के बिना, वेदों के अध्ययन का फल मिल नहीं सकता।

वेदों का अध्ययन और ज्ञान यदि धर्म है, तो उन पर आचरण करना परम धर्म!

आधार : मनुस्मृति, १. १०८-१० ; २. ६, १२.

सुवचन-सुधा

गूहता गुह्यं तमो
वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्त्ता यदुश्मसि ।।
—ऋ०, १. ८६. १०.

गुह्यं = गुहा के
तमः = अन्धेरे को
गूहत = छिपा दो, मिटा दो।
विश्वम् = सभी
अत्रिणम् = भक्षक (दोषों) को
वि यात = भगा दो, दूर कर दो।
यत् = जो
उश्मसि = हम चाहते हैं,
ज्योतिः = (उस) प्रकाश को
कर्त्ता = कर दो।

सर्वविध प्रकाश

अन्धेरे में रहना हमें पसन्द नहीं। अन्धेरा चाहे भौतिक हो या आत्मिक, बौद्धिक हो या मानसिक, अन्धेरा आखिर अन्धेरा है, हमें सर्वथा निगल जाने वाला है। इसे मिटाना ही होगा।

हमारे आस-पास का भौतिक अन्धेरा हमें निकम्मा कर देता है, हमारी शारीरिक गतिविधियों को पंगु बना कर रख देता है। उस अन्धेरे में डसने वाले कीट-जन्तु हमारे जीवन के लिए ही खतरा बन जाते हैं।

आत्मिक अन्धेरे में बुद्धि और मन ही कुण्ठित हो जाते हैं। तब हमारी स्थिति तिर्यग्योनि जीवों जैसी हो जाती है। मानव-जीवन की विशेष-सम्पत्ति बुद्धि पर जब परदा पड़ जाता है, तब भ्रम (delusion), संशय (doubt) और अज्ञान (ignorance) दनदनाने लगते हैं।

मन में जब भावनाओं का अन्धियारा उमड़ता है, तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार और ईर्ष्या हमें दबोच लेते हैं। किसी के प्रति निपट लगाव और झुकाव से, या दूसरे के प्रति उत्कट अलगाव या रोष से मन की आँखों पर पट्टी बंध जाती है, तब हम काम और क्रोध से अन्धे होकर मानसिक अन्धकार की गुहा में जा गिरते हैं। यही अवस्था उस समय भी होती है, जब चांदी की चमक से हमारी आँखें चुँधिया जायें, या जब श्रद्धा के नाम पर अन्धश्रद्धा के साथ जुड़े और जकड़े रह कर हम अपनी आँखें ही बन्द कर लें, या जब अपनी उपलब्धि पर गर्दन को अकड़ा कर अपनी नज़र को ज़मीन से हटा आसमाँ में टिका लें, या जब दूसरों की उपलब्धि को देख अपनी नज़र को ही जली-भुनी कर डालें। क्रमशः ये लोभ, मोह, अहङ्कार और ईर्ष्या की स्थितियां हमें घोर अन्धकार में धकेल कर न्यायोचित व्यवहार अपनाने से वञ्चित कर देती हैं।

हे सर्वशक्तिमन्, हमें शक्ति दो कि हम इन डसने वाले अन्धेरों को दूर भगा दें और उस प्रकाशमय पथ का अनुसरण करें, जिसे हम अच्छा समझते हैं और जिसे सभी पसन्द करते हैं। हे प्राणस्वरूप प्रभो, हम प्रण लेते हैं कि गुरु-चरणों में उपस्थित रह कर, और सदा स्वाध्यायशील बन कर, हम अपनी बुद्धि के अन्धेरे को दूर भगा देंगे। तब हमें न भ्रम डसेगा, न संशय और न ही अज्ञान। निष्पक्ष और निर्द्वन्द्व होकर हम सभी के साथ यथायोग्य व्यवहार करेंगे, जिस से समाज में गुणों के आदर को बढ़ाने में सफल हो पायेंगे। इसी प्रकार से ही हम में मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक ज्योति का विस्तार होगा। तब सभी ओर से सभी प्रकार का प्रकाश ही प्रकाश होगा।

—**'वाचस्पति'**

सम्पादकीय

पंजाब के स्कूलों से संस्कृत का निर्वासन

कैसी विडम्बना है जिस प्रदेश में संस्कृत फली, फूली और पली हो, उसी प्रदेश से ही उस को निर्वासित कर देने का उपक्रम कर दिया जाये!

पांच नदियों की इस पवित्र धरती पर संस्कृत के प्रथम स्वर गूंजे थे, यहीं के पावन आश्रमों में इस के अध्ययन और अध्यापन के साथ-साथ ऐसे साहित्य का सर्जन हुआ, जिस से भारत को जगद्गुरु की उच्च पदवी प्राप्त हुई। उफ़! उसी प्रदेश, पंजाब, के स्कूलों से संस्कृत को निकाल देने की योजना बना दी गई है!

पंजाब की जनता यह तो जानती थी कि संकीर्ण मनोवृत्ति के कुछेक लोग राजनीति का सहारा लेकर एक अर्सा से इस बात में थे। पर, पंजाब की जनता के लिए यह एक नया अनुभव, और निश्चय ही एक कटु अनुभव, अब की बार होगा कि शुद्ध वैधानिक दृष्टि से इस प्रदेश का प्रशासन चलाने वाले अत्यन्त योग्य, कुशल और ईमानदार प्रशासक भी उस संकीर्ण चाल को भाँप नहीं पाये!

यह बात लोगों की समझ से बाहिर है कि जनता के हितों को छूने वाला यह निर्णय तब हुआ है, जब जनता के प्रतिनिधि वहां पर नहीं हैं! प्रदेश के प्रशासन को इतनी जल्दी भी आखिर क्या पड़ी थी कि जन-प्रतिनिधियों के आने की भी प्रतीक्षा नहीं कर सके और झट ऐसा निर्णय कर डाला जिससे न केवल जनता की भावनाओं को ठेस पहुंची है, अपितु छात्रों को अपने पढ़ने के विषयों में चुनाव कर सकने की प्रजातान्त्रिक सुविधा से भी वञ्चित कर दिया गया है?

क्या इस तथ्य को बार-बार जतलाने और याद कराने की आवश्यकता रहेगी कि संस्कृत किसी एक वर्ग या सम्प्रदाय की नहीं, यह तो समूचे राष्ट्र की अनुपम और अमूल्य सम्पत्ति है। यह तो राष्ट्र के पुरखाओं की वह थाती है, जिसे राष्ट्र के बुद्धिजीवियों ने निजी सुख-वैभव की परवाह किये बिना अपने खून-पसीने से इसे न केवल जीवित ही रखा है, अपितु इसे समृद्ध भी बनाया है। इसे एक सम्प्रदाय से सम्बद्ध बतलाना इसके साथ तो अन्याय है ही, अपने साथ भी अन्याय है। इस महान् देश का वह कौन-सा प्रदेश है और वह कौन वर्ग या सम्प्रदाय है, जिस के सदस्य संस्कृत का अध्ययन न करते हों। सभी वर्गों में संस्कृत के विद्यार्थी और विद्वान् उपलब्ध हैं।

क्या यह कम महत्त्व की बात है कि अतिप्राचीन होते हुए भी यह भाषा आज भी नवीन है, ताजा है। यह पढ़ी, लिखी और बोली जाती है। इस में रचे गये पुराने वाङ्मय का अध्ययन अब भी होता है, नये साहित्य का सर्जन भी चलता है। इस में वे सभी लक्षण विद्यमान हैं, जो एक जीवन्त भाषा में अपेक्षित होते हैं। इस से भी बढ़ कर, इसमें वह संजीवनी शक्ति है, जो इसके महत्त्व और उपयोगिता को सौ-गुना बढ़ा देती है। यह भारत की आधुनिक भाषाओं को ऐसे साधन उपलब्ध कराती है, जिन से वे भाषाएं नव-नवीन आधुनिक संबोधों (concepts) को नाम देने में समर्थ हो पाती हैं। अतः संस्कृत का अध्ययन प्रादेशिक भाषाओं को और अधिक अभिव्यञ्जनशील (expressive) एवं समृद्ध बनाने में सहायक बनता है। प्रादेशिक भाषाओं की प्रगति में संस्कृत बाधक नहीं, प्रत्युत साधक है। भारत राष्ट्र की सभी प्रादेशिक भाषाओं को परस्पर निकट लाने और उनमें प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों में एकरूपता लाने के लिए संस्कृत से बढ़ कर अन्य कोई साधन नहीं। क्या हम इस प्रकार से राष्ट्र में भावनात्मक एकता (emotional integration) लाने के इस अमोघ साधन की यूं ही उपेक्षा कर देंगे?

मतवाद से निरपेक्ष राष्ट्रवाद के सच्चे प्रतीक, भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री, श्री जवाहरलाल नेहरु के ये शब्द अब भी हमारे कानों में गूंज रहे हैं—

"If I was asked what is the greatest treasure which India possesses, and what is her finest heritage, I would answer unhesitatingly it is the Sanskrit language and literature and all that it contains. This is a magnificient inheritance and so long as this endures and influences the life of our people, so long will the basic genius of India continue." अर्थात्, *"यदि मुझ से पूछा जाये कि भारत के पास कौन-सा सबसे बड़ा ख़ज़ाना है और उसकी सर्वोत्कृष्ट धरोहर क्या है, तो मैं बिला-झिझक जवाब दूंगा, वह निधि है संस्कृत भाषा, साहित्य और वह सब कुछ जो उसमें निहित है। यह एक शानदार थाती है। जब तक यह विद्यमान है और जब तक यह हमारे जन-जन के जीवन को प्रभावित करती रहेगी, तब तक भारत की मौलिक प्रतिभा स्थिर रहेगी।"*

इस अद्भुत भाषा संस्कृत के प्रति श्री नेहरु जी का यह प्रबल अनुराग अकारण नहीं था। वे इसमें राष्ट्र की आत्मा के दर्शन करते थे। भारत राष्ट्र श्री नेहरु जी के महान् उपकारों को भुला नहीं सकता। संस्कृत के प्रति उनके अपार स्नेह को कैसे भुलायेगा? क्या इस पंजाब प्रदेश के वासी और प्रशासक इस ओर ध्यान दे कर श्री नेहरु जी की इच्छाओं का सम्मान करेंगे?

संस्कृत इस महान् राष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों को एक लड़ी में पिरोने का एक सबल सूत्र तो है ही, अन्ताराष्ट्रिय अवबोध (international understanding) का भी यह प्रबल स्रोत है। संस्कृत का आकर्षण देश और जाति की सीमाओं को लांघ कर सार्वभौम और सार्वजनीन बन गया है। इस बारे में, बानगी के रूप में, सर विलियम जोन्स के उद्गारों को यहाँ पर उद्धृत करना ही पर्याप्त रहेगा—

The Sanskrit language, whatever be its antiquity, is of a wonderful structure, more perfect than the Greek, more copious than the Latin, and more exquisitely refined than either. अर्थात्, *"संस्कृत भाषा की प्राचीनता चाहे कुछ हो, इसकी संरचना अद्भुत है, ग्रीक भाषा से अधिक परिपूर्ण, लैटिन भाषा से अधिक पुष्कल, और दोनों की अपेक्षा अत्यधिक परिष्कृत।"*

माना, पंजाब सरकार शिक्षा के क्षेत्र में नया प्रयोग करते हुए १०+२ की योजना को लागू करने जा रही है। उसी योजना के नाम पर स्कूलों से संस्कृत का निर्वासन होने लगा है। पर, यह ध्यान रहे उसी योजना में कुछ प्रावधानों को स्थानीय अपेक्षाओं के अनुकूल बनाने के लिए लचक देने की गुंजाइश रखी गयी है। अन्य प्रदेशों ने इसका उपयोग किया भी है। पंजाब भी उसका लाभ उठा सकता है, चाहिये तो केवल इच्छा, भावना और निश्चय। पंजाब सरकार और पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड को चाहिये कि संस्कृत शिक्षाविदों सहित कुछ अन्य शिक्षाविदों एवं शिक्षा-अधिकारियों की एक समिति गठित करके इस विषय पर शुद्ध शैक्षणिक दृष्टिकोण से विचार-विनिमय करने का अवसर उपलब्ध कराये। शिक्षाविदों की उस समिति की सिफ़ारिशों पर सरकार उचित विचार करने के उपरान्त उन्हें लागू करने के लिए उपयुक्त पग उठा सकती है। सरकार तब कम से कम एकपक्षीय कार्यवाही के आरोप से तो बच सकेगी।

पंजाब के प्रबुद्ध शिक्षाविद्, संस्कृत-प्रेमी संस्थाएं और प्रभावशाली व्यक्ति, अपने प्रस्तावों, प्रतिवेदनों एवं शिष्टमण्डलों के द्वारा सरकार को प्रेरित करने के लिए और अधिक प्रयत्नशील हो जायें!

समय रहते तुरन्त ही पग उठाइये!

—डॉ० वेदप्रकाश विद्यावाचस्पति

प्रगतिशीलता का आह्वान मंत्र

प्रो० सुरेशचन्द्र वात्स्यायन

कोई भी देश, विशेषकर भारत जैसा संस्कृति मूल में संपुटित, स्फुट और पल्लवित देश अपनी जड़ों से कट कर जी नहीं सकता। जिस तेज़ी से मेकाले[1] द्वारा दी गई अंग्रेज़ी-केन्द्रित सफ़ेदपोश शिक्षा का हमारे यहाँ प्रसार हुआ है उतनी तेज़ी से हमारी युवा पीढ़ी अपने आप से अजनबी होती गई है। अजनबीकरण के इस अभिशाप को स्वाधीन भारत की दूसरी पीढ़ी ढो रही है। यही दशा साहित्य में उस स्वर की हुई है जिस ने 'गुमी हुई आज़ादी की कीमत' पहचान कर 'रोटी' के साथ 'कमल' की रक्षा के लिए 'फ़िरंगी को दूर करने की ठानी' थी और 'ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम' की सन्मति को रघुपति राघव राजाराम की धुन से जोड़ा था। धर्म के विज्ञान को विज्ञान के धर्म से जोड़ कर अब भी हम ने अगर अर्थ और काम को धर्म और मोक्ष की दिशा न दी तो विकारजन्य दुराचार के ऐसे कोढ़ की लपेट में हम आ जायेंगे जो मानव की बजाय हमें पीप व खुजली के मारे हुए उलूक, शुशुलूक, श्वान और गृध्र बना डालेगा।[2]

यह सन्तोष की बात है कि नेशन के लिए 'राष्ट्र' और सैक्युलर के लिए 'धर्म-निरपेक्ष' जैसे शब्दों की असंगति को पहचानने वाले कुछ भारतीय अभी जीवित हैं। लखनऊ, सिक्किम, जयपुर, मद्रास, तिरुअनंतपुर आदि अनेक स्थानों पर हुई साहित्य-गोष्ठियों में मैंने बार-बार कहा है कि सैक्युलर के समानान्तर हमारे यहाँ सम्प्रदाय-निरपेक्षता पर आधारित जो धर्म समभाव है वह भारतीय धर्म साधना का विशिष्ट मूल्य है। वैदिक ऋषि ने इसी मूल्य को समाज में प्रतिष्ठा दी थी और कहा था—

जनं बिभ्रती नाना धर्माणं बहुधा विवाचसं पृथिवी यथौकसं ··· ··· लेकिन सवाल यह है कि अंग्रेज़ी के मोह की अँधी परम्परा क्या हमें इस भागीरथी तक पहुँचने देगी? धर्म-समभाव हमारी जिस चेतना गंगा की लहरमणि है वह राष्ट्र-चेतना है, नेशन-चेतना नहीं। राष्ट्र के लिए 'नेशन' शब्द ओढ़ कर हम ने पहला अपराध यह किया कि स्वतन्त्रता संग्राम की मूल प्रेरणा को किनारे कर दिया। उपनिवेशवाद, औद्योगिक क्रान्ति पर आधारित पूंजीवाद, साम्राज्यवाद और मिशनरियों का सम्प्रदायवाद १८वीं-१९वीं शती में विकसित यूरोपीय नेशनवाद के घटक थे। स्वराज्य व राष्ट्र की वैदिक संकल्पनाएँ मानव द्वारा मानव के शोषण की नेशनवादी लीक का ज़ोरदार अस्वीकार थीं। यही अस्वीकृति आज़ादी की लड़ाई के दौरान पुनर्जीवित और पुनरावर्तित हुई। मगर राजनैतिक आज़ादी से इसका तालमेल न रहने के कारण हम ने राष्ट्र-चेतना से किनाराकशी को फलने दिया। कमल की जगह काई लेने लगी। राष्ट्र-चेतना नेशनवाद की लपेट में आ गई। समाजवादी घोषणाओं के बावजूद एकाधिकार व पूंजीवादी शोषण की नागफांस कड़ी होती गई। राजनीति ने जनतंत्र के आदर्श को प्रशासन व जन-जीवन में अपने उपनिवेशों के हवाले कर दिया। साम्राज्यवाद के स्थानीय संस्करणों ने अपने भ्रष्टाचार को पालना शुरू किया। मेकाले द्वारा भारतीयों को भारतीयता से अलग कर देने का लक्ष्य लेकर जारी की गई सफ़ेदपोश दफ़्तरी व्यवसाय-केन्द्रित अंग्रेज़ी-प्रधान शिक्षा की जड़ें और भी मजबूत होकर गहरे में फैलने लगीं। अंग्रेज़ी मोह में अंधा नागर भारत अब भी इस दुर्गति व दुरवस्था को नहीं देख रहा। इस अपराध के लिए इतिहास हमें कभी क्षमा नहीं करेगा। क्योंकि हम त्रिभाषी फार्मूला में स्कूल के स्तर पर अंग्रेज़ी की जगह प्रादेशिक भाषाओं के अध्ययन की सुविधा देने में संकोच कर रहे हैं।

क्यों हम भारत की भाषाओं में मौजूद समानताओं के ही प्रति बच्चों को जागरूक करके राष्ट्रीय एकता की दिशा देने में चूक रहे हैं? यूनिवर्सिटी के स्तर पर क्यों हम अंग्रेज़ी को अनिवार्य रूप में थोप कर रूसी, चीनी, जर्मन, फ्रेंच, नेपाली, बर्मी, सिंहली, जापानी, अरबी, फ़ारसी भाषाओं को सीखने-पढ़ने का विकल्प नहीं दे रहे? क्या हम अंग्रेज़ी के अजनबी माध्यम से ही राष्ट्रीय एकता लायेंगे और नेशनवाद से मुक्त होंगे? क्या इसी अजनबी माध्यम से हम यूरोपीय, अमेरिकी, सिनो-सोवियत और अफ्रेशियाई जगत् से जुड़ेंगे? विश्व भर में इतिहास, दर्शन, विज्ञान, कला के विकास में अंग्रेज़ी की पहल के आगे माथा टेकने और अपने यहाँ स्थानीय स्तर पर उसकी भोंडी नकल हम कब तक करते रहेंगे? विकास के लिए अपेक्षित मौलिकता की उपेक्षा का यह अभिशाप हम कब तक ढोते जायेंगे? कहाँ हैं वे साहित्य-साधक, सत्य के द्रष्टा और संधाता वे कवि, मनीषी जो यथातथ्य अर्थों को धारण करके मंत्र की वाणी में नवयुग के अभिनव उपनिषद् को जन्म दें और साम्प्रदायिकता, गुटबंदी व पूंजीगत शोषण से आतंकित मानवता को तीसरे विश्व युद्ध की बीभत्सता से बचने के लिए आह्वान दें। मानवता के मंगलमय भविष्य के निर्माण के लिए आज ज़रूरत है कि राजनैतिक दृष्टि से स्वाधीन भारत आज नेशनवाद की मानसिक दासता से मुक्त होकर भारतीयता का पुनः विकास करे और प्रगतिवादी नहीं बल्कि प्रगतिशील राष्ट्र चेतना की मशाल लेकर वसुधा के अन्तरिक्ष यात्री परिवार का स्वस्थ सदस्य सिद्ध हो।

—'संस्कृति', १८०, माडल टाऊन, लुध्याना

---

१. मेकाले के पत्र का उद्धरण।

"मेरे प्यारे पिता,

हमारे अंग्रेज़ी स्कूल विस्मयजनक प्रगति कर रहे हैं। हिन्दुओं पर इस (अंग्रेज़ी-केन्द्रित) शिक्षा का प्रभाव विलक्षण है। अंग्रेज़ी (माध्यम से) शिक्षा पाने वाला कोई हिन्दू अपने धर्म के प्रति निष्ठा में ईमानदार नहीं रहता। कुछ अपने को विशुद्ध ईश्वरवादी कहने लगते हैं और कुछ तो ईसाई ही हो जाते हैं।............इस प्रगति की भावी कल्पना से मैं पुलकित हूँ......"

—'लाइफ़ एण्ड लेटर्स ऑफ़ मेकाले' : पृ० ३२९-३०.

२. तु०, ऋ०, ७. १०४. २२ : उलूकयातुं शुशुलूकयातुं, जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं, दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥

❀ ❀ ❀

प्रेम-भरा हृदय अपने प्रेमपात्र की भूल पर दया करता है और स्वयं घायल हो जाने पर भी उससे प्यार करता है।

—महात्मा गांधी

एक सवाल छोटा-सा !

तारिक असलम 'तस्नीम'

आज !
नंगे पर्वत सा दिखने लगा है
आदमी !
स्वार्थ के आगे हाथ जोड़े खड़ा
सम्बंधों की कहा-सुनी से
बचने लगा है आदमी !
अपना ही चेहरा आईने में
अपरिचित-अनदेखा
नज़र आता है उसे !
मन में उमड़ती बात,
पल-पल छलती मुलाकात,
वो बताये किसे !
लोग काली सड़कों पर चल रहे हों
सिर झुकाये हुए !
अपने आस-पास के माहौल से
हादसों की चपेट से खुद को
बचाये हुए।
क्योंकि, किसे खबर है
कब कहां !
खरगोश की खाल में छिपे-बैठे
भेड़िये जाग पड़ें
और किसी बहाने से
तयशुदा शर्तों पर
राख के ढेर में बदल दें गांव-शहर
अपरिचित रिश्तों की तरह
एक-दूसरे की पहचान से बन
जायें एकदम अंजान !
इसी मोड़ पर
जब काली साजिशें होती हैं।
मानवता के कत्ल के लिए तत्पर !
बेहतर होगा,
हम डालें इस सवाल पर भी
एक नज़र !
क्यों हम
एक दूसरे की गर्दन पर
रखकर छुरियां
रक्त-रंजित हथेलियों पर बोते हैं
ख़ौफ़ और दूरियां
प्रत्येक आदमी की सांसों में
घुलता है ज़हर
फिर चिंखते हैं—
"एक लाख हिंदु, एक लाख मुसलमान मरे !"
मगर यह हम क्यों नहीं कहते
"दो लाख इंसान मरे।"
आखिर ! जो आत्मा में होता है
छुरे, चाकु, गोली से कैसे फ़ना हो
सकता है ? ...... ?
चाहे कोई किसी के जिस्म से
एक-एक बून्द रक्त
हड्डियां निचोड़ कर
बहा दे ! धूल-धूसरित कर दे।
इबादतखाने की दीवारें तोड़ कर !
एक अहम सवाल !
हमेशा ज़िन्दा रहेगा !
मानवता का इतिहास......भविष्य में
कैसा होगा !
आदमियों की बस्ती में
कोई नहीं
आदमी जैसा होगा ?

—हारून नगर कॉलोनी, फेज—२, प्लाट—६, फुलवारी शरीफ, (पटना)—८०१ ५०५

वन्दे मातरम् !

डॉ० सुधांशु मोहन अग्निहोत्री

निद्रा के सुअंक में युगल दृग् बन्द किये
अनायास स्वप्न में, देखा एक नारी को
अस्त-व्यस्त वेशभूषा, पाटल-प्रसून मुख, किंतु मुरझाया हुआ
निकट जा पूछा—"कौन हैं आप, क्या कारण उदासी का ?"
चौंक कर बोली वह—"मैं हूँ तुम्हारी सब की मातृभूमि—
कोटि-कोटि बेटे-बेटियों की जन्मदात्री !
भोगती हूँ, सहती हूँ मौन हो
कुटिल नियति से प्रदत्त आसुरी व्यथा ।"
सुनकर मैं भाव-विह्वल हो उठा—
"प्यारी जन्मभूमि की यह दशा !"
कहा हाथ जोड़ कर—"मात ! मत हो दुःखी
हम सब आप की ही सेवा में रत हैं
करोड़ों हम भाई-बहन
आप की ही वन्दना में अहरह नत हैं ।"
सहसा तमतमा उठा माता का म्लान मुख
बोलीं वे सरोष—"बस ! देख चुकी, जान चुकी सब को
भाई-भाई आपस में कटते हैं, मरते हैं"
थोड़ा-सा संयत हो माता ने आगे कहा—
"करती रहूँ क्या हाय ! बेटों का इसीलिए पोषण
कि शक्ति से मदान्ध हो के निर्बलों, अबलाओं का करें वे निर्लज्ज शोषण ।"
चरणों में झुक कर, विनम्र हो बोला मैं
"दो माँ आशीर्वाद
जननी जन्मभूमि के सत्यनिष्ठ भक्तों का
जागृत हो स्वाभिमान, आत्मज्ञान, होवे द्रुत नवोत्थान
श्यामा रजनी का गर्व चूर कर विजयी हो प्रिय विहान ।
एक साथ जागें हम, वैर-भाव त्यागें हम
कहें समवेत स्वर से नित्य 'वन्दे मातरम्' !"
माता ने प्रसन्न हो शीश पर हाथ धरा
खुले जब नेत्र तो देखा झरोखे से—
अरुण मुस्कुरा रहा, खग-वृन्द चहचहा रहा
झोंका प्रातः-मारुत का करने अभिवादन मुझे
सुगंध लिए आ रहा ।

—१, जी० टी० बाँगरमऊ, उन्नाव—२४१५०१

हिन्दी की क्लिष्टता का प्रश्न—एक वस्तुपरक विवेचन

डॉ० सत्यपाल शर्मा

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के सैंतीस वर्षों के दौरान अक्सर यह सुनने में आता रहा है कि हिन्दी क्लिष्ट और दुरूह है। इसे सरल बनाने की आवाज़ें भी उठी हैं और इन पर कुछ कड़ुवी-तीखी प्रतिक्रियाएँ भी हुई हैं, परन्तु सौभाग्यवश हमारी इस भाषा का प्रवाह सही दिशा में ही बहा है और इसने अपनी प्रकृति के अनुरूप ही अपना विकास किया है। इस भाषा के प्रयोग के विषय में आज न तो हमारा शासनतन्त्र और न सुपठित लोगों का समाज ही इतना गम्भीर है। बल्कि इसे व्यवहार और प्रयोग से दूर रखने के लिए इस पर आए दिन तरह-तरह के अभियोग लगाए जाते हैं। हिन्दी पर कठिन होने का आरोप इसका एक बड़ा प्रमाण है। वैसे हिन्दी को कठिन और क्लिष्ट कहना आज एक फ़ैशन बन गया है और परिणामस्वरूप जन-सामान्य में इस सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ पैदा हो रही हैं। अतः आज इस विषय के वस्तुपरक विवेचन-विश्लेषण की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है।

क्लिष्टता की अवधारणा :

क्लिष्टता के विषय में हर आदमी की एक अपनी सोच है। किसी के लिए संस्कृतनिष्ठ भाषा कठिन है तो किसी के लिए अप्रचलित फ़ारसी शब्दों वाली भाषा दुरूह है। कोई देशभाषा के शब्दों और मुहावरों को कठिन मानता है तो किसी के लिए आंचलिक प्रयोग क्लिष्ट हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि लेखक का जटिल व्यक्तित्व और प्रतिपाद्य विषय की दुरूहता, दोनों मिल कर ही भाषा को कठिन बनाते हैं। इसके अतिरिक्त असंबद्ध, अस्पष्ट और वायवी विचार भी इसे कठिन बनाते हैं। केवल शब्दों से कोई भाषा न सरल बनती है और न कठिन ही। वैसे हर लेखक की एक अपनी भाषा होती है। उसे एक विशिष्ट शब्दावली या रचना-शैली का प्रयोग करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता; फिर भिन्न-भिन्न भाषा-शैलियों, मुहावरों, संरचनाओं और शब्द-स्रोतों के प्रयोग से भाषा का कुछ घटता भी नहीं, बल्कि इन से तो यह समृद्ध ही बनती है। इन से उसका क्षेत्र-विस्तार होता है और उसकी लोकप्रियता भी बढ़ती है। उर्दू-फ़ारसी के प्रचलित शब्दों और मुहावरों का प्रयोग करने वाले लेखक हिन्दी का हित ही करते हैं और संस्कृतनिष्ठ शैली में रुचि रखने वाले लेखक भी कम महत्त्व के नहीं। वे वर्तमान को भूत से मिलाने का एक स्तुत्य कार्य करते हैं और हज़ारों वर्ष से चली आ रही भारतीय परम्परा और संस्कृति को हम तक पहुंचाते हैं। अंग्रेज़ी की रचना-शैलियों और शब्द-समूह को आवश्यकतानुसार हिन्दी में लाने वाले लेखक भी हिन्दी भाषा को अभिव्यक्ति-सक्षम बनाने में ही लगे हैं। परन्तु दूसरी भाषाओं से शब्द ग्रहण करने का कार्य सिद्धहस्त लेखकों और विवेकशील भाषाविदों द्वारा ही होता है, या फिर कुछ शब्द कुछ सामाजिक और ऐतिहासिक कारणों से सहज रूप में ही भाषा में प्रवेश पा जाते हैं। इस प्रक्रिया में एक लम्बा समय दरकार होता है अतः इस विषय में जल्दबाज़ी से काम लेना उचित नहीं होता।

संस्कृत स्रोतों की अनुकूलता :

आज जब हम हिन्दी का नाम लेते हैं तो कुछ आधुनिकतावादी स्त्री-पुरुष अपने दिमाग़ में कथित, क्लिष्ट, कठिन और संस्कृत शब्दों वाली एक दुर्बोध भाषा का चित्र बना लेते हैं तथा कुछ अन्य दुराग्रही लोग इन शब्दों का सहारा लेकर इस भाषा की खिल्ली उड़ाते हैं। इस समस्या के निदानस्वरूप यह

सुझाव दिया जाता है कि हमें अंग्रेज़ी, उर्दू, फ़ारसी आदि अन्य भाषाओं के शब्द खुले दिल से अपनाने चाहिएँ। संस्कृत शब्दों को अपनाने का उत्साह दुराग्रह की सीमा तक तो नहीं पहुंचना चाहिए। आख़िर अंग्रेज़ी वालों ने भी तो लैटिन, ग्रीक, जर्मन, फ्रेंच, संस्कृत तथा संसार की अन्य अनेक भाषाओं के हज़ारों शब्द अपनाए हैं। बात बिल्कुल सही है। दूसरी भाषाओं के प्रचलित और सुबोध शब्दों को अपनाना बुरा नहीं, परन्तु संस्कृत के कथित क्लिष्ट शब्द छोड़ कर दूसरी भाषाओं के क्लिष्ट शब्द अपना लेना भी कहाँ की अक्लमन्दी है।

फिर यह भी कोई अकाटच नियम नहीं है कि कोई भाषा किन्हीं अन्य विदेशी भाषाओं के सम्पर्क में आकर और उनकी शब्दावली अपना कर ही समृद्ध बन सकती है। यदि अपने देश में ही कोई समृद्ध भाषा-स्रोत हो तो किसी बाह्य भाषा-स्रोत का मुंह ताकने की जरूरत नहीं होती। संस्कृत जैसी वैज्ञानिक, जीवन्त और समृद्ध भाषा किसी भी भारतीय भाषा को समृद्ध बनाने में समर्थ है। रूसी, चीनी, जापानी तथा विश्व की अन्य बहुत-सी भाषाओं का दूसरी भाषाओं से बहुत कम सम्पर्क रहा है, फिर भी वे समृद्ध बनी हैं। इसलिए हिन्दी पर कोई ऐसा बन्धन नहीं है कि वह अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के ही शब्द ग्रहण करे। जिन अभिप्रायों को प्रकट करने के लिए संस्कृत में शब्द विद्यमान हैं उनके लिए विदेशी भाषा का सहारा लेना अच्छा नहीं। सोवियत रूस की भाषा नीति भी यही रही है और हमें भी इसकी व्यावहारिकता समझनी चाहिये।

पूर्वाग्रह-भरी सोच को त्यागें :

अंग्रेज़ी के कठिन और अप्रचलित शब्दों का बोल-चाल और लेखन में प्रयोग करना न केवल एक फ़ैशन है बल्कि यह एक प्रतिष्ठासूचक और गरिमा-पूर्ण कार्य भी माना जाता है। इसे कोई भी अयुक्त या अनुचित नहीं कहता। इन शब्दों की अपरिचितता और क्लिष्टता पर कोई अंगुली नहीं उठाता। उदाहरणतः, दिल्ली तथा अन्य महानगरों में कई स्थानों पर लिखा मिलता है—'यहाँ मज़दूरों के बच्चों के लिए स्कूल और क्रैश की व्यवस्था है।' 'क्रैश' एक नितान्त अपरिचित और अप्रचलित शब्द है और अधिकतर लोग तो इसे समझते ही नहीं। यदि समझते हैं तो इसका उच्चारण (क्रैंच) ग़लत करते हैं। क्या इसकी जगह शिशुमन्दिर या शिशुगृह का प्रयोग अनुचित है? अंग्रेज़ी के क्लिष्ट शब्दों को सगर्व और सहर्ष स्वीकार करने वाले लोग यदि हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत के कथित क्लिष्ट शब्दों पर नाक-भौं सिकोड़ें तो यह अनुचित ही होगा।

हिन्दी की पाचन-शक्ति कम नहीं :

हिन्दी में संस्कृत के शब्दों की बहुलता पर आपत्ति करने वालों को यह नहीं भूलना चाहिए कि संसार की लगभग सभी प्रगतिशील भाषाएँ अपनी पूर्ववर्ती भाषाओं से शब्द लेकर ही अभिव्यक्ति-सक्षम और समृद्ध बनी हैं। अंग्रेज़ी का उदाहरण हमारे सामने है। इसमें पाये जाने वाले मीटर, मेटाफ़िज़िक्स, मेटाफ़र, मेटामारफ़िक आदि शब्द ग्रीक स्रोतों से आए हैं; मेमोरी, लश, मादाम, बोनाफ़ाईड, ब्यूटी, रैण्डर, रिनोन, रेण्ट, टेपेस्टरी आदि शब्द फ्रेंच स्रोतों से आए हैं; रिप्यूगनेन्स, रिपल्स, रिप्यूट, सर्वाईव, सस्पेण्ड, सुपरवाईज़, मिटिगेट आदि शब्द लैटिन स्रोत से आए हैं, टेम, टैप, टेप, टारगैट, टीच, मूर, मूट, मन्थ आदि शब्द ऐंग्लो-सैक्सन हैं। स्पष्ट है कि अंग्रेज़ी में आए अधिसंख्य शब्द यूरोप की प्राचीन भाषाओं से हैं। यदि यह भाषा इनकी ऋणी है तो हिन्दी प्राचीन वैदिक, संस्कृत तथा विभिन्न प्राकृतों की ऋणी है। हिन्दी ने संस्कृत के अतिरिक्त शौर-सेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी, पैशाची, प्राकृत तथा अपभ्रंश और आधुनिक बोलियों से शब्द और रचना-शैलियां ग्रहण कर अपने आप को समृद्ध बनाया है। स्वदेशी स्रोतों से आने वाले शब्दों से भाषा कठिन नहीं बनती, बल्कि यह राष्ट्रीय संस्कृति और परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाली एक सहज भाषा बन जाती है, परन्तु यदि कोई व्यक्ति यह चाहे कि उसे बिना परिश्रम के ही अपनी भाषा पर अधिकार प्राप्त हो जाए तो यह उसकी नादानी ही मानी जाएगी।

संस्कृतनिष्ठ हिन्दी सहज हिन्दी है :

आधुनिक उर्दू ने अपनी अभिव्यक्ति को समृद्ध

बनाने के लिए फ़ारसी भाषा से एक विपुल शब्द-भण्डार ग्रहण किया है। इस पर किसी भी उर्दूदान या किसी अन्य भारतीय विद्वान् ने आपत्ति नहीं की। आपत्ति होनी भी नहीं चाहिए। फ़ारसी यद्यपि एक विदेशी भाषा है और इसकी प्रकृति, संरचना और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से हम परिचित नहीं हैं परन्तु फिर भी हमारे साहित्यकारों ने किन्हीं ऐतिहासिक और सामाजिक कारणों से यदि इसके शब्दों को अपना लिया है तो इन पर आपत्ति करने का कोई कारण नहीं। उर्दू को समृद्ध और खूबसूरत बनाने वाली फ़ारसी शब्दावली से हम प्यार करते हैं और इसे प्रयत्नपूर्वक सीखते हैं। आकाशवाणी की उर्दू सर्विस, रेडियो पाकिस्तान और बी. बी. सी. के उर्दू कार्यक्रम ही देख लीजिए। इनकी उर्दू में ग्रामीण विकास के लिए 'देही तरक्की', ऊर्जा के स्रोतों के लिये 'तवानाई के जखीरे', राष्ट्रीय एकता के लिए 'कौमी यकजेहती', पृष्ठभूमि के लिए 'पसमन्ज़िर', जनमत के अधिकार के लिए 'हक्के खुदंइरादीयता', राजनैतिक संवाद के लिए 'सियासी मुज़ाकिरात', आर्थिक सहयोग के लिए 'इकतसादी तआवन', सभ्यता के लिए 'मयीशत', अन्तर्राष्ट्रीय के लिए 'बैनुल अकवामी', व्यावहारिक सूझ-बूझ के लिए 'हिकमते अमली' और संभावना के लिए 'तवक्को' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार रचनात्मक रवैया, साहित्यिक यात्रा, तटस्थता का सिद्धान्त, राजनैतिक मतभेद आदि शब्दों के लिए क्रमशः 'तामीरी रद्देअमल', 'तख़लीकी सफ़र', 'उसूले नावाबस्तगी', 'सियासी इख़तलाफ़ात' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। आज की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को दुरूह और क्लिष्ट कहने वाले इस उर्दू पर भी जरा विचार करें। यदि फ़ारसीनिष्ठ उर्दू खूबसूरत है तो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी कुरूप और क्लिष्ट कैसे हो सकती है। हर भाषा की अपनी प्रकृति और एक अपनी पहचान होती है। हिन्दी की भी एक अपनी पहचान है। संस्कृत शब्द-भण्डार उसके अनुकूल बैठता है यद्यपि यह अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने में भी सक्षम है। संस्कृत उसके लिए एक सहज सुलभ स्रोत है। इसके बिना तो यह अपना स्वरूप ही खो देगी।

हिन्दी में सहजरूप में ही प्रवेश पा जाने वाले संस्कृत मुहावरों और प्राचीन सूक्तियों पर हमारे आज के बुद्धिजीवी नाक-भौं सिकोड़ते हैं, परन्तु अंग्रेज़ी में पाई जाने वाली लैटिन, फ्रेंच और ग्रीक सूक्तियों के सामने वे नतमस्तक हो जाते हैं। अंग्रेज़ी में 'इस तथ्य के आधार पर' के लिए 'इप्सो फ़ैक्टो', 'पूर्वस्थिति' के लिए 'स्टेटस क्वो' 'अनिश्चित काल तक के लिए' के वास्ते 'साइने डाई', 'जैसे को तैसा' के लिए 'क्विड प्रोक्वो', 'विचाराधीन' के लिए 'सबजुडिस', 'अति पवित्र स्थान' के लिए 'सैंकटम-सैंक्टोरम' और 'अधिकार क्षेत्र से बाहर' के लिए 'अल्ट्रा वायर्स' आदि मुहावरों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार यदि हिन्दी में संस्कृत सूक्तियों का प्रयोग किया जाए तो इससे वह दुरूह नहीं बनेगी, बल्कि उसकी अभिव्यंजना शक्ति बढ़ेगी।

स्वदेशीपन और सरलता :

हिन्दी वास्तव में उन्हें कठिन लगती है जो इसे पढ़ने का और इसका अभ्यास करने का कभी कष्ट नहीं करते। स्वदेशी भाषा स्वदेशवासियों के लिए कठिन कैसे हो सकती है। यदि हमारे देश के लोग अपनी पुरातन संस्कृति और परम्परा से जुड़ने का थोड़ा-सा भी प्रयत्न करें तो उन्हें अपने देश की भाषा कभी कठिन न लगे। इसके विपरीत अंग्रेज़ी भाषा हमारे लिए कठिन है क्योंकि इसमें फ्रेंच, जर्मन, लैटिन, ग्रीक, ऐंग्लो-सैक्सन शादि स्रोतों से शब्द आए हैं और पश्चिमी देशों की परम्परा से हमारा परिचय नहीं है। विदेशी भाषा में प्रयुक्त होने वाले उपसर्गों, प्रत्ययों, क्रियापदों, विशेषणों आदि से हम नितान्त अनभिज्ञ होते हैं। इस लिए भी विदेशी भाषा हमारे लिए कठिन है। यदि हमने अपनी परिश्रमशीलता और कर्मठता के बल पर अंग्रेज़ी भाषा पर अधिकार कर लिया है तो अपनी भाषा को सीखने में तो बिल्कुल कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अंग्रेज़ी के ऐथिक्स, रोज़री, क्रॉनिकल, फ़ोरकास्ट, एविएशन, डैमन, जियालॉजी, आर्क्यालॉजी आदि शब्दों की अपेक्षा, नीतिशास्त्र, माला, इतिहास, भविष्यवाणी, वैमानिकी, राक्षस, भूगर्भशास्त्र, पुरातत्त्व

आदि शब्द हमारे लिए अधिक सरल हैं क्योंकि इनके मूल से हम परिचित हैं।

प्रयोग से क्लिष्टता नष्ट होती है :

वास्तव में हिन्दी को कठिन और दुरूह कहे जाने का कारण भारतीय लोगों का अपनी भाषा के प्रति वह पूर्वाग्रह भी है जो उनकी गुलामी की मानसिकता से जन्मे अंग्रेज़ी-प्रेम का फल है। पिछले दिनों हिन्दी में जो पारिभाषिक शब्दावली बनी है उस पर भी इस वर्ग ने क्लिष्टता का प्रमाणपत्र जड़ दिया है। इस शब्दावली में अंग्रेज़ी के सब्स्टीच्यूट, सब्सीडीयरी, सुपरसेशन, सरचार्ज, टैक्सेशन, अण्डरटेकिंग, वेलिडिटी, सैक्शन ऑफ़िसर, रिमाईंडर, रीइम्बर्समेण्ट आदि दफ़्तरी शब्दों के लिए क्रमशः प्रतिस्थानी, गौण, अधिक्रमण, अधिभार, कराधान, उपक्रम, विधिमान्यता, अनुभाग अधिकारी, अनुस्मारक, प्रतिपूर्ति आदि शब्द आते हैं तथा इन जैसे अन्य पारिभाषिक शब्दों को देख कर लोग कह उठते हैं कि हिन्दी वालों ने बहुत कठिन शब्दावली बनाई है, परन्तु हम पूछते हैं कि क्या अंग्रेज़ी के पारिभाषिक शब्द सरल हैं। यदि ये सरल हैं तो इसका एक मात्र कारण यह है कि दफ़्तरी कामों में इनका बार-बार प्रयोग होता है और इससे इनका चलन आम हो गया है। जहाँ तक भारतीय शासनतन्त्र का संबन्ध है, संस्कृत स्रोतों से आई हुई शब्दावली इसके लिए सब से उपयुक्त है परन्तु इस में यदि किन्हीं लोगों को कुछ कठिनाई अनुभव होती है तो इस में न अपनाने, अभ्यास की कमी और पूर्वाग्रह दोषी हैं।

अप्रचारित और अप्रचलित शब्द कठिन तो लगते ही हैं, परन्तु बार-बार के प्रयोग से जब वे आम लोगों की ज़बान पर चढ़ जाते हैं तो सरल हो जाते हैं। यदि हम स्वदेशी भाषा के उद्यान, दलबदल, छिड़काव, बालवाड़ी, गुलाबी, महाभियोग, आतंक, घुसपैठिया, विधायक आदि शब्दों की जगह अंग्रेज़ी के ऑर्चर्ड, डिफ़ेक्शन, स्प्रे, क्रैश, पिंक, इम्पीचमेण्ट, पैनिक, इनफ़िल्ट्रेटर, एम० एल० ए० आदि शब्दों का प्रयोग करते चले जाएं और फिर कहें कि हिन्दी कठिन है तो इस में दोष किस का होगा। प्रयोग के अभाव में भाषा मर जाती है।

संयुक्ताक्षरों से डरें नहीं :

हिन्दी शब्दों के विषय में यह भी आपत्ति की जाती है कि ये बड़े भारी भरकम और लम्बे होते हैं परन्तु जब हम अंग्रेज़ी शब्दों को देवनागरी अक्षरों में लिख कर हिन्दी शब्दों से उनकी तुलना करते हैं तो हमें पता चलता है कि हिन्दी शब्द अपेक्षाकृत छोटे और सरल होते हैं। हिन्दी में भद्रता, बडवानल, बाध्य, बाग़बान, अव्यावहारिक, हानिरहित, निर्गन्ध, हिमनद, पर्वतारोहण आदि शब्द छोटे हैं या अंग्रेज़ी के जैण्टलमैनलीनैस, सबमेरीन फ़ायर, ओव्लाईज्ड, आर्चर्डिस्ट, इम्प्रैक्टीकेबल, इनआॅफ़ेन्सिव, इनआॅडॉरस, ग्लेशियर, मौण्टेनीयरिंग आदि शब्द छोटे हैं ? यह भी सुनने में आता है कि हिन्दी शब्दों में संयुक्ताक्षर बहुत होते हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेज़ी में संयुक्ताक्षर अधिक होते हैं। अंग्रेज़ी में इनका जो दर्शन नहीं होता उसका कारण इसकी सरलीकृत रोमन लिपि है। वैसे अंग्रेज़ी में आपको तीन-तीन और चार-चार अक्षरों का मेल होता भी दिखाई देगा। 'इन्फ्लूएन्ज़ा', 'ऐग्ज़ेक्युटिव', सस्सेप्टिबिलिटी, लीक्वीडेशन 'मास्क्वारेडर', 'इन्स्यूरिएट', 'इनोबल', 'ऐक्सैण्टरिक', 'ऐग्ज़ेजरेशन' आदि शब्दों में तथा ऐसे ही अन्य हज़ारों शब्दों में संयुक्ताक्षर प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

उच्चारण की सरलता :

हिन्दी शब्द, उच्चारण की दृष्टि से भी अंग्रेज़ी शब्दों से सरल होते हैं क्योंकि एक तो ये छोटे और सुपरिचित होते हैं दूसरे ये हमारे मुखावयवों के अनुरूप ढले होते हैं। अंग्रेज़ी में सैटरडे, ऐग्ज़ैक्युटिव, फिनान्स, कन्ज़रवेटिव जैसे हज़ारों शब्द ऐसे हैं जिनके उच्चारण का सही रूप जानना कठिन होता है परन्तु फिर भी इनका बहुतायत से प्रयोग होता है। इसके विपरीत हिन्दी शब्दों का उच्चारण बड़ा स्पष्ट, स्थिर और अक्षरानुसारी होता है। हमारे गाँवों, व्यक्तियों, नदियों, स्थानों आदि के नाम जब रोमन लिपि में लिखे जाते हैं तो उनका उच्चारण प्रायः ग़लत हो जाता है परन्तु देवनागरी लिपि में जैसा लिखा जाता है वैसा ही बोला जाता है, अतः स्पष्ट है कि देवनागरी अक्षरों में लिखी गई हिन्दी

कठिन नहीं, बल्कि किसी भी विदेशी भाषा से सरल है।

राष्ट्रभक्ति की मांग—स्वभाषा-प्रेम :

यदि हिन्दी भाषा सरल न भी हो तो भी हमें इसे अपनाना चाहिए। अपनी भाषा केवल इसलिए तो नहीं अपनाई जाती कि वह सरल होती है। वह तो इसलिए अपनाई जाती है कि उसकी प्रकृति समाज के अनुकूल होती है और उसमें काम करना आसान होता है। अपनी भाषा के माध्यम से जन-जीवन को समझना और उससे तादात्म्य स्थापित करना सुगम होता है। कोई भी राष्ट्र केवल इसलिए अपनी भाषा को नहीं छोड़ देता कि वह कठिन है। चीनी भाषा कठिन है परन्तु फिर भी चीनी उससे प्यार करते हैं और अपना सारा काम-काज उसी में करते हैं। यदि हम दफ़्तरों में तथा अन्य काम-काज में हिन्दी का उपयोग ही नहीं करते तो हमें इसे कठिन कहने का क्या अधिकार है।

हम हिन्दी वाले :

हमारे बहुत से बुद्धिजीवी 'हिन्दी वालों' को अक्सर भला-बुरा कहते रहते हैं। वे उन्हें 'चाऊवेनिस्ट', 'फेनेटिक', 'जैलॉट' आदि अनेक गालीसूचक विशेषणों से पुकारते हैं और फिर उनकी तथा 'उनकी हिन्दी' की भलाई के लिए उन पर उपदेशों की बौछार कर देते हैं। वे उन्हें कहते हैं—'हिन्दी को सरल बनाओ, लोकप्रिय बनाओ। हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकों की कमी है, इसे दूर करो। हिन्दी की पाचनशक्ति बढ़ाओ।' प्रश्न उठता है कि आखिर ये हिन्दी वाले हैं कौन? क्या इस देश के वे सब लोग भी हिन्दी वाले नहीं हैं जिन्होंने अपना तन, मन और धन अंग्रेज़ी को अर्पित कर दिया है? हिन्दी वाले न तो कहीं बाहर से आए हैं और न आसमान से ही गिरे हैं। ये वे लोग ही तो हैं जिन्हें उनके पूर्वजों ने एक समृद्ध, अभिव्यक्ति-सक्षम और सुन्दर भाषा दी थी और इसी के द्वारा हज़ारों वर्ष की पाली-पोसी सांस्कृतिक विरासत सौंपी थी, परन्तु जो आज उस भाषा को दूर फेंक कर एक विदेशी भाषा, पराई संस्कृति और उधार की मानसिकता के दास बन गए हैं।

निष्कर्ष :

अतः हम कह सकते हैं कि स्वदेशी लोगों के लिए स्वदेश की भाषा कभी कठिन नहीं होती। हिन्दी को क्लिष्ट और दुरूह कहने वाले वे लोग हैं—

१—जो इस भाषा के प्रति पूर्वाग्रह रखते हैं और इसी कारण इसे सीखने का कभी कष्ट नहीं करते।

२—जिनकी आँखें, अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ीयत की चकाचौंध से चुँधिया गई हैं और जो अपनी सही सलामत आँखों से भी स्वदेशी भाषा के स्वरूप और उसकी विकास-प्रक्रिया को नहीं देख पाते।

३—जो उस व्यापक और अघोषित षड्यन्त्र में शामिल हैं जिसके तहत हिन्दी को अंग्रेज़ी का स्थान ग्रहण नहीं करने दिया जा रहा।

४—जो इस भाषा से वास्तव में अनभिज्ञ हैं और जिन्हें हिन्दी सीखना एक फ़ालतू काम लगता है।

५—जो एक हीनभाव से ग्रस्त हैं और जो अंग्रेज़ी को अपना कर मानसिक तुष्टि प्राप्त करते हैं।

—चौधरी पोल्ट्री फ़ार्म, निचला श्यामनगर, धर्मशाला (हि० प्र०)

अनधिकृत श्रेय

प्रो० शादीराम जोशी

नाट्य और अभिनय शायद मानव-समाज की प्राचीनतम कलाएं हैं। विकास-क्रम में बहुत पिछड़ी हुई जातियों में भी इस कला का विकास हुआ है। अपने हृदय के भावों को अपने शरीर की चेष्टाओं के द्वारा, चेहरे की भाव-भंगिमाओं के द्वारा आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से दर्शकों तक पहुंचाना और दर्शकों को प्रभावित करना निस्सन्देह एक साधना-प्राप्य उपलब्धि है। विकसित समाजों में नाटक को एक उच्च कला माना गया है। जगत् के सर्वश्रेष्ठ माने गए नाटककार शेक्सपीयर के नाटकों का सफल अभिनय करने वाले अभिनेता भी सरकार तक से 'सर' आदि उपाधियां प्राप्त करते रहे, जनता ने तो उनका सत्कार किया ही। रंगमंच पर किसी अभिनेता का लगातार घंटों तक एक बड़े दर्शक-समूह के सामने सफल अभिनय करना वास्तव में एक बड़ी साधना है और इस साधना का अभिनन्दन होना ही चाहिए।

परन्तु आज के सिनेमा-युग में, फिल्मों में अभिनय करने वाले अभिनेताओं का प्रचलित सत्कार यदि अनधिकृत नहीं तो उचित से कहीं ज्यादा तो है ही। स्क्रीन पर जो चित्र अढ़ाई-तीन घंटे तक देखा गया है उसके अभिनेताओं ने निरंतर अढ़ाई-तीन घंटों ही में अपनी साधना और कला का प्रदर्शन नहीं किया है। ये अभिनेता तो महीनों तक स्टूडियो में अपने अभिनय के छोटे-छोटे टुकड़ों का अभिनय करते रहे हैं और हर टुकड़े के अभिनय के कितने ही अलग-अलग फोटोग्राफ-चित्र लिए गए हैं और हर टुकड़े के उन कितने ही चित्रों में से सर्वश्रेष्ठ चित्र चुन लिया गया है। इस प्रकार चुने गए सर्वश्रेष्ठ चित्रों को जोड़ कर किसी दृश्य का फोटोग्राफ़ तैयार कर लिया गया है। न जाने कोई अभिनेता किसी टुकड़े के अभिनय में कितनी बार असफल रहा। स्पष्ट ही स्क्रीन पर दिखाई देने वाले किसी अभिनय का श्रेय अभिनेता को उतना नहीं है, जितना कैमरे को है। सिनेमा के अभिनय में ज्यादा करामात कैमरे की होती है। इसके लिए केवल अभिनेता को श्रेय मिलना उचित नहीं है।

उदाहरण के लिए, एक चित्र में हम देखते हैं कि किसी ने मकान की ऊपर की मंज़िल से किसी भिखारिन के भिक्षा-पात्र में एक सिक्का फैंका और वह सिक्का ठीक भिक्षा-पात्र में गिरा तो भिखारिन के इस अभिनय पर तालियां बज गईं। परन्तु वास्तव में न जाने कितनी बार इस अभिनय के चित्र लिए गए होंगे, जिनमें कोई एक सफल चित्र हासिल किया गया होगा। स्क्रीन पर वह दृश्य भिखारिन का अभिनय करने वाली अभिनेत्री के गौरव का कारण बन गया। वास्तव में अभिनेत्री को श्रेय का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार सिनेमा-चित्र अभिनेताओं की अभि-नय-कला का ठीक प्रदर्शक नहीं हैं। उस अभिनय में अधिकांश श्रेय 'कैमरा-ट्रिक्स' को होता है।

स्क्रीन पर दिखाई देने वाला अभिनेताओं और अभिनेत्रियों का रंग-रूप और सौंदर्य भी कृत्रिम और मेक-अप से प्राप्त होता है।

यह सब होते हुए भी हमारे युवक-युवतियों का अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के पीछे पागल होना वास्तविक पागलपन ही मालूम होता है। निस्सन्देह कुछ श्रेय तो उनको मिलना ही चाहिए, परन्तु उतना ही जितना अधिकृत हो।

—१६३, बस्ती बाबा खेल, जालन्धर

क्या आपके पास कुछ भी अच्छाई है ?

डॉ० रामचरण महेन्द्र, पी-एच० डी०

प्रत्येक मनुष्य दो तत्त्वों का बना है—ईश्वरत्व और राक्षसत्व, पुण्य और पाप, प्रकाश और छाया, अच्छा और बुरा, देवता और दानव, अमृत और विष। पहले आदमी पशु था, फिर ज्ञान के बढ़ने के साथ-साथ उसने सभ्यता सीखी। पशुपन, ओछी आदतें, हिंसा, स्वार्थ, क्रोध, आवेश, उग्रता आदि छोड़ी और अपना परिष्कार किया। मनुष्य को मालूम हुआ कि और जानवरों की अपेक्षा उसमें अधिक बुद्धि-विवेक है, अधिक अच्छाई है, देवत्व, ईश्वरत्व है, भलाई करने की विशेष शक्ति है। दूसरे पशु अपने क्षुद्र स्वार्थ, खाने-पीने, मौज उड़ाने, प्रजनन, पालन-पोषण, स्वार्थवश हिंसा, प्रतिशोध आदि में लगे हुए हैं, उनके पास न कोई आदर्श हैं, न अच्छी नीति, न भलाई करने की सद् इच्छा, न परोपकार की शक्ति।

समाज में ऐसे ही अनेक व्यक्ति हैं—शरीर से स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट, अच्छा खाने, अच्छा पहिनने वाले, मौज-मस्ती में डूबे, क्षुद्र स्वार्थों में लिपटे हुए! पर उन्हें अच्छाई से कोई मतलब नहीं। वे अपने जीवन के पशु-पक्ष में ही संतुष्ट हैं। अच्छाई-पुण्य वाले पक्ष—परोपकार, सदाचार, अनुशासन, संयम, त्याग, निर्माण की ओर न कभी देखते हैं, न उसके लिए चिन्तित ही होते हैं। अपनी दुष्टता त्याग कर सज्जनता अपनाने की ओर ध्यान नहीं देते। दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति में भी कुछ ईश्वरत्व (अच्छाई) छिपा रहता है। यदि वह अपने चरित्र या जीवन की किसी अच्छाई, श्रेष्ठता, कुशलता के विषय में खोज-बीन करे, तो उसे बहुत से देवत्व वाले गुण मिल जायेंगे। वाल्मीकि जैसे हिंसक और डकैत अपना नीच कर्म त्याग कर श्रेष्ठ सज्जन बन गए। अपनी अच्छाई खोजने से मूर्ख भी ज्ञानी, दुराचारी सदाचारी, दुश्चरित्र सच्चरित्र, दुर्व्यसनी संयमी बन गए। वासना को वश में कर ज्ञान-वृद्धि और आचरण-शुद्धि के साथ सम्मान के रास्ते पर आगे बढ़े।

सद्ज्ञान और आत्मज्ञान की अच्छाई मनुष्य में है, पशु में नहीं। मनुष्य यह सद्ज्ञान कुछ तो विद्याध्ययन से प्राप्त करता है, परन्तु बहुत कुछ विद्वानों, गुरुजनों तथा अच्छे व्यक्तियों की संगति से प्राप्त करता है। मनुष्य जब अपने से अधिक बुद्धिमान्, विद्वान्, गुणवान् और योग्य व्यक्ति के सम्पर्क में आता है, तब उसके छिपे या सोये हुए सद्गुणों का विकास होता है। स्वाध्याय और सत्संगति से मनुष्य की कलुषित इच्छाएं नष्ट होती हैं, मूर्खता और पापाचरण दूर होते हैं, विवेक-बुद्धि निखरती है।

निश्चय ही आप में अच्छाई छिपी हुई है। वह ईश्वर ने विशेष रूप से आपको ही दी है। अपनी यह श्रेष्ठता खोजिए, अपनी अच्छाई (गुणों) को पहचानिए और विकसित कीजिए, पशुता और राक्षसत्व त्याग कर मनुष्यता और देवत्व बढ़ाइये। गुणों के विकास से ही कलुषित वासनाएँ, बुद्धि की मूर्खता और पापाचरण दूर होते हैं, जीवन में सुख और सफलता प्राप्त होती है और समाज में प्रतिष्ठा मिलती है।

श्रेष्ठ पुरुषों, विद्वानों, ऋषि-मुनियों और सत्-साहित्य के सम्पर्क में आने से हमारे आचरण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, चरित्र उच्च और निर्मल हो जाता है; क्रूर आदतें, व्यसन आदि छूट जाते हैं। धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय से हम अमूल्य लाभ उठा सकते हैं।

"सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्", अर्थात् सत्संगति मनुष्य को क्या नहीं बना सकती। सत्संगति से ही अच्छाई विकसित होती है। इसी से मनुष्य सुसंस्कृत और परिष्कृत होता है। 'कीटोऽपि सुमनःसंगाद आरोहति सताम् शिरः।' अर्थात्

साधारण कीड़ा पुष्प की सुसंगति से बड़े-बड़े देवताओं और महापुरुषों के मस्तक पर चढ़ जाता है। अतः गुणी व्यक्तियों की संगति और श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन किया कीजिए।

आज मानव-समाज ने जो उन्नति की है और जिस गति से प्रगति हो रही है, वह मनुष्य की अच्छाइयों के प्रसार का ही परिणाम है। हर संत-महात्मा, विद्वान्, विचारक, नेता, मनीषी, वैज्ञानिक, उद्योगपति, अनुसंधानकर्त्ता आदि विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत महापुरुषों ने अपनी-अपनी अच्छाइयाँ (गुण) दूसरों को दीं, उनकी सहायता से नयी पीढ़ी ने अपनी योग्यताएँ विकसित कीं और इस प्रकार आज हम ज्ञान-विज्ञान के उच्च शिखर पर पहुंचे हैं। आप अपने क्षेत्र में अपनी प्रतिभा निरन्तर विकसित कीजिए। प्रतिभा के विकास के लिए आत्म-निरीक्षण, परिश्रम और सतत साधना की आवश्यकता है। मानसिक आलस्य की कचुली उतार फैंकिये और मेहनत द्वारा साधना कीजिए। जितना ही अपनी छिपी प्रतिभा को निखारने का अभ्यास करेंगे, उतना ही ऊँचा उठेंगे।

उत्क्राम महते सौभगाय।

(यजुर्वेद, ११.२१)

महान् सौभाग्य प्राप्ति के लिए निरन्तर ऊपर उठते चलो। प्रतिदिन कुछ न कुछ उन्नति करो।

आक्राम पर्वतादधि पर्वतम्।

(अथर्ववेद; १५.२३.५)

अर्थात् प्रतिभा की एक चोटी से परिश्रम करते-करते दूसरी ऊँची चोटी पर पहुंचो।

—रिटायर्ड प्रिंसिपल, गवर्नमेंट कालेज, नयापुरा, कोटा (राज०)

लघुकथा—

बा-ज़रूरत

कमल चोपड़ा

ये छोटे लोग ····सेठ जी ने जान बूझ कर इस फुटपाथिये पर कार थोड़े-ही चढ़ा दी थी। ज़रा स्पीड तेज़ थी बस। उसी समय जेब से दो हज़ार के नोट निकाल कर उस की औरत के सामने रख दिये थे सेठ जी ने। और कार आगे बढ़ गई, जैसे कुछ हुआ ही न हो। अब की स्पीड पहले से भी ज्यादा थी।

ये छोटे लोग ·····सेठ जी कार में बैठे-बैठे भुनभुना रहे थे। पास ही बैठा आठ साल का उनका शहज़ादा बोला—डैडी··· मंत्री अंकल, आई. जी. अंकल, सभी लोग तो आप के दोस्त हैं ···क्यों न उनसे कह कर शहर से सभी छोटे लोगों को ढूंढ-ढूंढ कर बाहर निकलवा दें······ये छोटे लोग बहुत तंग करते हैं······भूखे, कमीने, गन्दे लोग न हों तो यह शहर कितना साफ़ और अच्छा हो जाए······।

—हा हा······बेटे······यह हो गया तो हम ही छोटे हो जायेंगे······।

—क्यों ···· कैसे ?

—अरे······इन्हीं के रहते तो हम बड़े हैं······ये न हों तो न कहीं सफाई हो······ सारे काम खुद करने पड़ें · ···फैक्टरियां बन्द तो आमदनी बन्द·· ···नौकरियां कौन करेगा···· अरे इन्हीं के बनाए तो हम बड़े हैं। इन्हीं के नीचे रहते हुए तो हम ऊँचे हैं।

—बेटे······इन्हें ज़िन्दा तो रखना ही है···वर्ना···हां···इतनी भी सुविधा नहीं देनी चाहिए कि ये सर उठाने लगें और इन्हें इतना भी नहीं निचोड़ना चाहिए कि ये रहें ही ना······ इन के बिना तो······कल्पना भी······ओह······।

—१६००/११४, त्रिनगर, दिल्ली—११००३५

चलती चक्की देखिकै दिया कबीरा रोय....

डॉ० मुरारिलाल शर्मा 'सुरस'

अनवरत रूप से चलते हुए संसार-चक्र में फँस कर किसे मति-भ्रम नहीं हुआ ? ऐसे वीतरागी, निस्पृही, तपस्वी और मनस्वी विरले ही हैं जो 'सार' जसा दिखाई देने वाले किन्तु वस्तुतः 'असार', जागृत और कार्यरत किन्तु 'स्वप्नवत्' संसार की वास्तविक गति को पहचान लेते हैं। वे जपाजप की सहज साधना से दुर्लक्ष्य भव-बाधाओं को भी लाँघ जाते हैं और उनका एकाग्र मन आत्म से परमात्म तत्त्व में विलीन होने लगता है। सिद्ध-साधक, तपस्वी और मनस्वी कबीर ने सांसारिक माया-जाल में फँसते और उलझते हुए व्यक्तियों, आत्माओं को देख कर ही कहा था—

चलती चक्की देखिकै दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबित रहा न कोय।

समय-समय पर कबीर ने जो बातें कहीं उन में दार्शनिकता, समाज-सुधार, आत्म-सुधार, परोपकार, पर-पीड़न, हिंसा, कर्मकाण्ड का विरोध, आदि सभी का ऐसा मिला-जुला रूप मिलता है जो समाज की आवश्यकता और उपयोगिता के अनुरूप जितना आज से ५०० साल पहले था उतना ही उपयोगी आज भी है और आशा है कि आने वाले हजार साल तक भी इसकी जिजीविषा समाप्त नहीं होगी।

कबीर के उपर्युक्त दोहे में दो पाटों के बीच में पिसने के बारे में संकेत किया गया है। प्रश्न यह है कि ये दो पाट कौन से हैं ? कनक-कामिनी, ज़र-जोरू, कोमलता-कठोरता, तर्कशीलता-भावुकता, आत्म-अनात्म, उद्दंडता-ऋजुता, प्रवृत्ति-निवृत्ति, सामाजिक साम्य-वैषम्य, हिंसा-अहिंसा, मानवता-बर्बरता या कोई और। इन सारी विसंगतियों के बीच उनकी ललकार, फटकार, निरंकुश एवं निर्भीक वाणी आज भी हमारे मन-मस्तिष्क को छूती हुई अंतरतम को वेध जाती है। ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है कि समाज का अधिकांश वर्ग मौन-मूक रह कर अत्याचार झेलता है, पाखण्डों और ढकोसलों में फँस कर सर्वत्र विनीत और विनम्र होने के कारण ठगा जाता है। जब ज्ञान देने वाला स्वयं अंधकूप का अनुगामी है तो शिष्य को ज्ञान का दीप कहाँ से और कैसे दिखा सकता है ? ऐसे ही गुरु-शिष्य को लक्ष्य कर कबीर ने कहा था—

जिसका गुरू भी अन्धला चेला खरा निरंध।
अंधे अंधा ठेलिया दोन्यो कूप पड़न्त॥

समाज के मोहांध व्यक्तियों, अज्ञानियों और जड़भरतों को प्रबुद्ध करने के लिए कबीर की वाणी कैंची की तरह काटती हुई, मछली की तरह बीच धारा को चीरती हुई और शेर की तरह अज्ञान अरण्य में दहाड़ती हुई अपना स्वतन्त्र पथ चुनती है। ऐसा निर्भीक, मस्तमौला और फक्कड़ फ़कीर समाज के दुःख-दर्द को अपने गले के नीचे उतारता हुआ स्पष्ट और तलख़ शब्दावली में बाल की खाल उतारता है। उसके प्रातिभ ज्ञान की सराहना के लिए ढूंढने पर भी उपयुक्त शब्द नहीं मिलते।

साईं से सच्चे रहने वाले कबीर की दृष्टि में ऊँच-नीच का भेद मनुष्यकृत है क्योंकि 'एक बिन्दु तें जाये' ब्राह्मण और शूद्र, मौलवी और मुरीद में मूलतः कोई अन्तर नहीं। मन्दिर-मस्जिद धर्म के नहीं कर्मकाण्ड के अड्डे हो गये हैं। ये भेद-भाव की खाई को पाटते नहीं बल्कि और भी गहरा और चौड़ा करते जा रहे हैं। रोजा, नमाज, तीर्थ, व्रत, माला फेरना अब सच्चाई और ईश्वर-सेवा के साधन नहीं रहे, प्रदर्शन और लोगों को बहकाने के लिए दिखावे के रूप मात्र बन कर रह गये हैं। अलख निरंजन

का नाम लेने वाले को ईश्वर अलख हो गया है, उस में और संसारी व्यक्ति में कोई अन्तर नहीं रह गया है। पतिव्रता और कुलटा, साधु और असाधु, सामाजिक और असामाजिक में सतही तौर पर अंतर न देख सकने वालों में कबीर ने सूक्ष्म मर्मभेद बुद्धि से जो भेद-भाव देखा और समझा उसे ज्यों का त्यों समाज के सामने रख दिया। उनकी वाणी उस नारियल के समान है जो ऊपर से भले ही कठोर है किन्तु उसके भीतर रस की धारा प्रवाहित हो रही है।

समाज को डांट-फटकार कर सही रास्ते पर लाने वाले कबीर किस सीमा तक भावुक और विनम्र थे, इसे कम लोग ही जानते हैं। वे सच्चे साधुओं के पैर का धूल बनने में गौरव अनुभव करते थे, स्वयं को 'राम का कुत्ता' कहने में भी संकोच अनुभव नहीं करते थे। उनकी तीखी तेज-तर्रार वाणी का एक-एक शब्द अनमोल मोती है, तो विनम्रता और भक्ति-भावना-समन्वित शब्दों में समर्पण और स्वानुभूति की पावन गंगा बह रही है। लोग कहते तो हैं कि इस संसार-सागर से निष्कलंक जाना कठिन है क्योंकि—

काजर की कोठरी में कैसे हू सयानो जाय।
एक लीक काजर की लागिहै पै लागिहै॥

परन्तु निष्कलंक होकर परलोक धाम जाने वाले नेता को कबीर ने 'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया' का आदर्श जीवन बिता कर दिखाया और कहा—

कबीर जब हम जनमिया जग हासा हम रोय।
अब करनी ऐसी कीजिए तुम हासौ जग रोय॥

—डी० ए० वी० कालेज, जालन्धर—१४४ ००८

उद्बोधन !

(स्वतन्त्रता-प्राप्ति के अवसर पर लिखी गई अप्रकाशित रचना)

श्री विष्णुनारायण अग्निहोत्री

सोने वाले जाग उठे हैं, नव सुगन्ध है सोने में।
गूंजेगी अब गिरा हमारी, जग के कोने-कोने में,
चरण हमारे नवप्रकाश पा, द्रुत विकास-पथ खोजेंगे,
अब विलम्ब क्या भारत का नवराष्ट्र-अग्रणी होने में।
भव्य हिमालय की छाया है, गंगा माँ की माया है,
सुख-समृद्धि की सुधा भरेगी द्रुम-द्रुम के दल-दोने में।
कृषकों का भी यश चमकेगा, खेतों में खलिहानों में,
नहीं थकेंगे उत्पादन में, जन-हित धान्य सँजोने में।
छात्र हमारे देश-देश में जागृति-ज्योति जगायेंगे,
समझेंगे सौभाग्य बीज संस्कृति के पग-पग बोने में।
अन्न, वसन, निवसन की सारी दूर समस्यायें होंगी,
अब न वितायेंगे भूखे, गृह-हीन समय हम रोने में।
नर में नारायण प्रस्तुत हैं, अत्याचार मिटाने को,
महासिन्धु की लहरें सक्षम सारे कल्मष धोने में।
धन्य धरा उर्वरा, धन्य तुम वीर-प्रसू हे माताओ,
महा क्रान्ति की लपट, तुम्हारे अंचल तनिक भिगोने में।

—रिटायर्ड प्रिंसिपल (केन्द्रीय विद्यालय), १, जी० टी०, बांगरमऊ, उन्नाव (उ० प्र०)

आत्मकथा साहित्य की उपादेयता

डॉ० विश्वबन्धु 'व्यथित'

यद्यपि यह निर्विवाद है कि 'आत्मकथा' सार्थक जीवन की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति होती है, तो भी अनेक आत्मकथा-लेखकों को यह झिझक बहुत दिनों तक बांधे रखती है कि वह, जो उनका एकान्त व्यक्तिगत है, उनकी निजी स्मृतियों का पिटारा है, उनके अन्तरंग अनुभवों का क्रमबद्ध इतिहास है, वह दूसरों के किस काम आयेगा ? लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह झिझक केवल उनकी लज्जालुता का ही दूसरा प्रतिरूप होती है। इससे आत्मकथा की उपयोगिता में कुछ भी कमी आने की सम्भावना प्रतीत नहीं होती। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य में ऐसी एक भी आत्मकथा का उदाहरण नहीं मिलता जो केवल इसी कारण अनादृत हुई हो। इसके विपरीत स्थिति यह है कि अब पाठक आत्मकथा की ओर अधिक आकृष्ट होने लगे हैं। महात्मा गांधी की आत्मकथा **सत्य के प्रयोग** जैसी कुछ आत्मकथाओं का पाठकों ने इतना अधिक सम्मान किया, जितना उनकी किसी अन्य रचना का नहीं। अनेक भाषाओं में इसके पचासों संस्करण प्रकाशित हुये, लाखों प्रतियां बिकीं। इतना ही नहीं, अनेक लेखकों ने तो आत्मकथा की इस विशेषता को व्यावसायिक दृष्टि से भी देखने का प्रयास किया है। **क्रान्तिपथ का पथिक** के लेखक पृथ्वीसिंह आजाद ने लिखा है :—

"उस पूरे जीवन वृत्तान्त को बापू जी, महादेव भाई देसाई, और किशोरी लाल मश्रुवाला ने फिर से पढ़ा। पढ़कर उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि इसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर दिया जाये। किशोरी लाल मश्रुवाला ने कहा कि सरदार पृथ्वीसिंह के इस चरित्र को अगर पुस्तक का रूप दे दिया जाये, तो वह पुस्तक गरम-गरम पकौड़ों की तरह बिक जाएगी और उसकी आमदनी से सरदार जी के परिवार के आर्थिक संकट सदा के लिए समाप्त हो जायेंगे।"[1]

कुछ असाधारण आत्मकथाओं की विशिष्ट उपयोगिता के पक्ष में कहा जा सकता है कि वे पाठकों को इसलिए भी आकृष्ट करती हैं कि वे इनसे किसी क्रान्तिकारी के जीवन के उन अज्ञात रहस्यों को सहज ही जान लेंगे, जिन्हें अतीत में सैंकड़ों जासूसों के दल भी प्राप्त कर पाने में समर्थ न हो सके।

आत्मकथा की दूसरी विशिष्ट उपयोगिता यह है कि इतर जनों के जीवन के प्रति जिज्ञासा रखने की सहज प्रवृत्ति भी इस आकर्षण के मूल में कार्य करती है। ताक-झांक की प्रवृत्ति साधारण से साधारण मनुष्य में भी पाई जाती है। साधारणतया देखा जाता है कि आस-पड़ोस के घरों में होने वाले लड़ाई-झगड़ों, व्यक्तिगत चर्चाओं अथवा भीतरी खुसर-पुसर तक को सुनने के लिए हमारे कान अतिशय व्यग्र रहते हैं। अतः जो दीवारों के कान कहे जाते हैं, वस्तुतः वे दीवारों के पीछे छुपे हुये पड़ोसियों के कान ही होते हैं। फिर यदि, किसी अपराध-वृत्ति का खतरा उठाये बिना, किसी पर्दे और दीवार की ओट का सहारा लिए बिना, किसी अन्य के रहस्य खुले में ही सुनने का मौका मिले, तो कौन इसे गँवाना चाहेगा ? प्रत्येक व्यक्ति की अपने से बाहर के जीवन और जगत् के यथार्थ तथ्यों का प्रत्यक्षीकरण करने की लालसा ही तो समाचारपत्रों की सफलता का रहस्य है।

कहानी, उपन्यास या नाटक व फिल्म आदि का रसास्वादन करते हुए भी हम जीवन के यात्रा-पथ पर बढ़ते हुए दूसरे स्त्री-पुरुषों के पदचिह्नों को

देखकर बाट का अनुमान करना चाहते हैं। दूसरों के पदचिह्न हमें पथ की भटकन से सुरक्षित रखने का आश्वासन देते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् के ऋषि ने आत्मोदाहरण से परवर्ती पीढ़ी का मार्ग-दर्शन करने हेतु ही तो कहा था :—

यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि।[२]

अर्थात् जो हमारे जीवन के अच्छे आचरण हैं, तुम उन्हीं का अनुकरण करना। जो हमारे जीवन के अन्य अर्थात् दूषित आचरण हैं, उनका अनुकरण मत करना। इस प्रकार आत्मकथा की तीसरी महती उपयोगिता यह भी है कि पाठक सहज ही अपने पूर्वपुरुषों के जीवन का साक्षात्कार और विश्लेषण करके उनसे उपयोगी मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकें।

आत्मकथा साहित्य की चौथी उपयोगिता ऐतिहासिक तथ्यों की सुरक्षा से सम्बन्धित है। विशेष रूप से, साहित्यकारों की आत्मकथाएं तो परवर्ती समीक्षकों के लिए वरदान-स्वरूपा सिद्ध होती हैं और उनका अभाव सर्वथा अप्रीतिकर प्रतीत होता है। डॉ० उर्वशी ने इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए लिखा है :—

"प्राचीन काल में हमारे लेखकों की प्रवृत्ति आत्मचरित्र लिखने की दशा में बिल्कुल न रहने के कारण प्रसंगवश उल्लिखित संदर्भों में व्यक्तिगत परिचय पूर्णतः प्राप्त नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति में बाह्य साक्ष्य का आधार लेना पड़ता है।"[३]

हिन्दी के प्राचीनकाल और मध्यकाल के इतिहास की शोध करने वालों को इस आत्मकथात्मक प्रवृत्ति के अभाव के कारण कितनी कठिनाइयां उठानी पड़ी होंगी, इसका अनुमान इस उदाहरण से भली भांति लगाया जा सकता है कि यदि मध्यकाल के कवि अपने वंश-परिचय आदि का संकेत करते भी थे, तो एकदम प्रच्छन्न भाव से। भिखारीदास ने अपने 'काव्य निर्णय' में एक कवित्त लिखा है :—

अभिलाषा करी सदा ऐसी, नीका होय ब्रित्य,
सब ठौर बिन सब याही सेवा चर चानि।
लोभा भई नीचे ज्ञान हुला हल, ही को अंत है
क्रिया पाताल निंदा रस ही को खानि।
सेनापति देवी कर शोभा गनती को, भूप पन्ना
मोती हीरा होम सौदा दास ही को जानि।
हीय पर देव पर बदे यश रटै नाउं
खगा सन नग घर सीता नाथ को ला पानि।[४]

इस कवित्त में छुपे हुए कविनाम, कुल, वंश आदि को जानने के लिए हमें इस दोहे का सहारा लेना पड़ेगा :—

या कवित्त अन्तवरण लै तुकान्त द्वै छांडि।
वास नाम कुल ग्राम कहि नाम भगति रस मांडि॥[५]

इस दोहे में बताई गई रीति से एक-एक वर्ण छोड़ कर और एक-एक वर्ण का ग्रहण कर गोमूत्रिका बन्ध की शैली से इसमें कविवर भिखारीदास का नाम और उनका वंश परिचय प्राप्त होता है। जैसे कवित्त के वर्णों को पतले टेढ़े करके दिखाया गया है कि कवि का नाम 'भिखारी दास', जाति 'कायस्थ' एवं वर्ण 'बहिवार' है। भाई का नाम 'चैन लाल', कोत (गौत) 'कृपालदास' है। नाति 'बीर भान', पनामह (पितामह) 'रामदास', 'यखर' प्रदेश, 'ट्योंगा' नगर, 'तायला' ग्राम है, आदि। इस कूट परिचय की खोज क्या किसी तिलस्म तोड़ने से कम श्रमापेक्षी है?

इसके विपरीत आत्मकथा विधा का विकास हो जाने के पश्चात् जब कवि और लेखक अपने जीवन की प्रत्येक उलझन सुलझाने में स्वयं उत्सुक होने लगे हों, तब समीक्षकों के लिए स्थिति कितनी सरल और सहज हो जाती है? इसका एक उदाहरण जैनेन्द्र के आत्मकथन से प्रस्तुत है। उन्होंने इसमें अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण करके पाठकों और समीक्षकों की संभावित भ्रान्ति का निवारण किया है।

"तकाज़े पर प्रेमचन्द को कहानी लिख भेजी 'सांप'। लेकिन एक दो हफ़्ते बाद तार से फिर ताकीद आई। असल में कहानी उन्हें नहीं मिली थी। फिर बाद में उसी मौज़ू पर कुछ लिखकर दूसरी जगह भेज दिया। वहां अभी वह चीज छपी न थी कि कागजों में प्रेमचन्द को 'सांप' कहानी मिल गई और फौरन उन्होंने 'हंस' में छाप दी। इस तरह आज भी इस कहानी के दो रूप मौजूद हैं। वे दोनों चीजें एक हैं, लेकिन रंग दो हैं।"[६]

इसी प्रकार प्रेमचन्द, अम्बिकादत्त व्यास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, वृन्दावनलाल वर्मा, अरुण, हरिवंश राय बच्चन, अमृता प्रीतम, उपेन्द्रनाथ अश्क, चतुरसेन शास्त्री, सेठ गोविन्ददास, के. एम. मुन्शी, राहुल आदि श्रेष्ठ साहित्यकारों की आत्मकथाओं ने सुचारुतया भावी समीक्षकों का पथ प्रशस्त कर दिया है। अब उन्हें तथ्यानुसंधान के लिए पहेलियां बुझाने की आवश्यकता अनुभव नहीं होगी। धीरे-धीरे आत्मकथा विधा की लोकप्रियता और प्रतिस्पर्धा में क्रमशः वृद्धि होने पर ऐसी स्थिति आ सकती है, जबकि प्रत्येक लेखक ही आत्मकथा लिखने की इच्छा व्यक्त करे।

अभी पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में भी स्थिति में भारी परिवर्तन आ चुका है। कम से कम आत्मकथा विधा के विरोध की स्थिति आज नहीं है। सन् १९३२ में जब 'हंस' पत्रिका का आत्मकथा-विशेषांक निकला तथा 'माधुरी' पत्रिका ने भी कुछ लेखकों के आत्मचरित प्रकाशित किये, तो नन्द-दुलारे वाजपेयी एवं प्रेमचन्द में यह ऐतिहासिक विवाद चला था कि इस प्रवृत्ति को संवर्धन देना चाहिए कि नहीं। वाजपेयी जी इस मत के पक्ष में थे कि परम्परा की रक्षा करते हुए साहित्यकारों को अपने विषय में मौन रखना ही उचित है, उन्हें अपने मुँह मियां मिट्ठू बनने को विवश नहीं किया जाना चाहिये। इसके उत्तर में प्रेमचन्द जी ने ज़ोरदार आवाज़ उठाई थी कि लेखकों द्वारा अपने जीवन और कृतित्व पर स्वयं प्रकाश डालना निर्भ्रान्ति इतिहास-लेखन के लिए सर्वाधिक उपकारक एवं श्रेयस्कर हैं। किन्तु आज शायद खोजने पर भी ऐसा समालोचक कठिनाई से मिले, जो आत्मकथा की उपयोगिता के विरुद्ध अपना मत दे सके। यह बात पृथक् है कि चाहते हुए भी कोई लेखक आत्मकथा-लेखन के उपयुक्त श्रम, साहस या अवसर न जुटा सके

आत्मकथा साहित्य की एक विशेष उपयोगिता यह भी है कि आत्मकथा इतिहास न होकर भी पाठकों के लिए इतिहास से भी अधिक विश्वसनीयता प्रदान करती है। क्योंकि इतिहास का सत्य आंकड़ों का सत्य होता है, जो केवल तार्किक बुद्धि की सन्तुष्टि कर सकता है। आत्मकथा का सत्य भावना का सत्य होने से पाठकों के अन्तर्मन में झंकृति उत्पन्न करने में समथ होता है। आखिर हम साहित्य और इतिहास का अध्ययन करके यही तो जानना चाहते हैं कि हमसे पहले इस जीवन पथ पर आने वाले लोगों को किन संघर्षों का सामना करना पड़ा होगा, किस प्रकार की मनःस्थिति में पूर्वपुरुषों ने अपनी व्यक्तिगत समस्याएं सुलझाई होंगी। किस प्रकार उन्होंने अपना जीवन-लक्ष्य निश्चित किया होगा और उसकी प्राप्ति हित क्या सुप्रयास किए होंगे? इस सब सामग्री का जितना सुव्यवस्थित, सच्चा और यथार्थ समाधान हमें आत्मकथा से प्राप्त होता है, ऐसा किसी अन्य विधा से प्राप्त होना कठिन है। इतिहास में तो वैसे ही समष्टि चित्रण अधिक होता है, व्यष्टि चित्रण कम। युगचेतना पर जितना भरपूर प्रकाश इतिहास के पन्नों से पड़ता है, युग-संघर्ष को भोगने वाले व्यक्ति-विशिष्ट के प्रति इतिहास में उतना ही अधिक उपेक्षा भाव देखा जाता है। फिर युगचेतना तो निरन्तर बदलती रहती है। उसका ज्ञान करके कौतूहल की शान्ति मात्र की जा सकती है। जीवन संघर्ष में कूदने हेतु पुष्कल प्रेरणा उससे सहज-प्राप्य नहीं होगी। वह प्रेरणा तो युग-संघर्षकर्ता और भोक्ता 'व्यष्टि' के वैयक्तिक अनुभव-खण्डों का परिचय प्राप्त करके ही अधिगत की जा सकती है।

सच तो यह है कि इस 'आत्मकथा' शब्द में ही कुछ ऐसा आकर्षण है कि कोई भी व्यक्ति उत्तम-पुरुषात्मक शैली में कुछ भी लिख कर छाप दे, तो सामान्य पाठकों द्वारा उस लेखन को एक विश्वसनीय जीवन-तथ्य समझ लिया जाता है। इस आकर्षण का ही प्रभाव है कि अनेक कथा-साहित्य-लेखक कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उत्तम-पुरुषात्मक शैली का धड़ाधड़ प्रयोग कर रहे हैं। इतना ही नहीं जन-सामान्य की आत्मकथात्मक शैली में लिखी हुई कृतियों में बढ़ती हुई विशिष्ट अभिरुचि का दुरुपयोग करते हुये अनेक मासिक पत्र-पत्रिकाओं के संपादक अपने पाठक-पाठिकाओं की यौन-समस्याओं को सुलझाने के बहाने उनके मुँह से अनेक अश्लील कथाओं की सृष्टि करवा कर अथवा छद्मनामा लेखकों के नाम से ऐसी तथाकथित सत्यकथाएं प्रकाशित करके जनता की

जेबों पर डाका डालने के साथ-साथ उनके मानसिक स्वास्थ्य को भी दूषित करने का उपक्रम कर रहे हैं। इसे आत्मकथा के प्रति अतिविश्वसनीयता की भावना का दुरुपयोग ही तो कहा जाएगा।

आत्म-परिचय के अतिरिक्त प्रख्यात कवि या लेखक बहुधा अपनी रचनाओं की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण एवं पृष्ठभूमि और परिस्थितियों का वर्णन भी अपनी आत्मकथाओं में करते हैं। अतः समीक्षकों के लिए लेखकों की कृतियों की विवेचना तथा निर्भ्रान्त मूल्यांकन करने हेतु यह एक अतिरिक्त उपयोगिता है।

आत्मकथा साहित्य की एक भविष्यकालीन संभावित सदुपयोगिता यह भी है कि मानव सृष्टि के सर्वोच्च विचारकों, मनीषियों, ऋषियों, योगीश्वरों, तपस्वियों, बलिदानियों, राजर्षियों, सन्तों, साधकों, लेखकों और वैज्ञानिकों की श्रेष्ठ आत्मकथाओं के विश्लेषण-संश्लेषण से अनन्त, अकल्पित लाभ उठाये जा सकेंगे। आज के वैज्ञानिक युग में मनोविज्ञान या मानवविज्ञान आदि को इसीलिए तो आदरपूर्ण स्थान प्राप्त है कि विज्ञान की ये शाखाएं मानव की आचरण-पद्धति की व्याख्या या समीक्षा करने में समर्थ हैं। किन्तु क्या यह जान कर विस्मय नहीं होता कि बड़े-बड़े मनोविश्लेषकों की प्रयोगशालाओं में अध्ययन-सामग्री के रूप में आज भी अध्येता या तो अपने निजी मनोभावों का अध्ययन करने को विवश हैं, या मनश्चिकित्सालयों में प्रविष्ट हिस्टीरिया आदि से ग्रस्त मनोरोगियों की 'केस हिस्ट्री' का विश्लेषण करके वे आचरण नियमों का अनुसंधान करते हैं। अधिक से अधिक उन अर्धसत्यों की पुष्टि आंकड़ों के संकलन की शैली से की जाती है। यदि शीघ्र श्रेष्ठ आत्मकथाओं के संग्रह एवं उनके भाषान्तरण से अधिकतम विश्वसनीय सामग्री समर्थ मनोवैज्ञानिकों को प्राप्त हुई, तो उसके सूक्ष्म विश्लेषण से युगान्तरकारी, मानवकल्याणकारी, नवमनोवैज्ञानिक, मानवशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की स्थापना कदापि अकल्पनीय और असंभव न होगी। वह अध्ययन विश्व-मानवता का कायाकल्पकारक सिद्ध होगा, इस में संदेह की गुंजायश नहीं है।

यद्यपि इस सम्पूर्ण संभावित उपयोगिता को अर्जित करने या उसका हिसाब लगाने की चर्चा अभी समय से पहले की बात होगी, किन्तु इस चिन्तन से हम 'आत्मकथा' नामक साहित्य विधा के विशिष्ट महत्त्व और उपादेयता से परिचय प्राप्त करके इतना तो कर ही सकते हैं कि हम अभी से इस विधा की संवृद्धि में यथाशक्य लेखकीय, पाठकीय, समीक्षकीय या प्रकाशकीय योगदान दें, ताकि भूतकाल के रत्न-कण नष्ट न हों और भविष्य में इन अमूल्य मोतियों की व्यावसायिक स्तर पर खेती की जा सके।

---

१. क्रान्तिपथ का पथिक, पृथ्वीसिंह आज़ाद, पृष्ठ 'ख', भूमिका।
२. तैत्तिरीय उपनिषद्, ११. ३७
३. अनुसंधान का व्यावहारिक स्वरूप, डॉ० उर्वशी, पृष्ठ १७
४. काव्य निर्णय, भिखारीदास, पृष्ठ २४४
५. छन्दार्णव पिंगल, पृ० ४
६. जैनेन्द्र—व्यक्ति कथाकार और चिंतक, सं० बांके बिहारी भटनागर, पृ० ११०-११२

—डी० ए० वी० कालेज, अबोहर

हिन्दी साहित्य और आर्यसमाज

यशपाल विद्यालंकार

गुरुकुलों के माध्यम से 'हिन्दी' के उत्थान में योगदान—

गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली हमारी प्राचीन विरासत है। राम, कृष्ण तथा चाणक्य जैसे ऋषि इन्हीं गुरुकुलों की देन हैं। जिस समय स्वामी दयानन्द घर छोड़कर भागे थे उस समय उन्होंने भी गुरुवर विरजानन्द जी से गुरुकुल में ही शिक्षा ग्रहण की थी। कार्यक्षेत्र में उतरने के पश्चात् स्वामी जी ने देखा कि हिन्दी पढ़ाने वाला कोई संस्थान नहीं है। उत्तर प्रदेश में भी उस समय हिन्दी को ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाया जाता था। इस अवस्था को देखकर स्वामी जी ने लोगों को गुरुकुल प्रणाली की रूपरेखा समझाई। गुरुकुल का महत्त्व बताया। यह स्वामी जी का ही प्रभाव है कि आज भारतवर्ष के कोने-कोने में हिन्दी और संस्कृत के माध्यम से शिक्षा देने वाले गुरुकुलों का जाल-सा बिछा हुआ है। सबसे प्राचीन गुरुकुलों में गुरुकुल कांगड़ी (जो आज विश्वविद्यालय का रूप धारण कर चुका है), हरिद्वार, गुरुकुल ज्वालापुर, गुरुकुल सिकन्दराबाद, गुरुकुल वृन्दावन तथा गुरुकुल विद्यापीठ, भैंसवाल का नाम लिया जा सकता है। इन संस्थाओं ने इस देश को प्रत्येक क्षेत्र के प्रशस्त विद्वान् दिये हैं। आप कहीं किसी भी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय में चले जाइये, गुरुकुलीय प्रणाली से शिक्षित दो चार विद्वान् आपको अवश्य मिल जायेंगे। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आज जितनी भी हिन्दी या संस्कृत-माध्यम से शिक्षा देने वाली संस्थाएं हैं वे सब की सब उस महामना महर्षि की कृपा का परिणाम हैं। हिन्दी साहित्य के उत्थान में इन संस्थानों का योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता। इसी प्रकार ही डी. ए. वी. संस्थाओं की स्थापना की गई। इन संस्थाओं में भी हिन्दी के उत्थान के लिए विशेष शिक्षा दी जाती है। गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली से चकित होकर श्री वी. एस. श्रीनिवास ने कहा था—"गुरुकुलों ने मेरी इस धारणा को ग़लत सिद्ध कर दिया है कि सिर्फ अंग्रेज़ी माध्यम से ही उच्च शिक्षा दी जा सकती है। मैं मानने लगा हूं कि हिन्दी माध्यम के द्वारा भी ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जा सकती है।"[1]

डी० ए० वी० संस्थाओं के रूप में हिन्दी को प्रोत्साहन —

स्वामी दयानन्द की मृत्यु के उपरान्त शिक्षा-प्रणाली के क्षेत्र में दो विचारधाराएं पैदा हुईं। एक विचारधारा के लोगों का विचार था कि सही उद्देश्यवाली शिक्षा के लिए गुरुकुल प्रणाली ही उचित है, लेकिन कुछ लोग जो आर्यसमाज का क्षेत्र विशाल बनाना चाहते थे, इस पक्ष में नहीं थे। उनका कहना था कि हमें आधुनिक स्कूल, कालेजों के रूप में भी शिक्षा देनी चाहिए। मेरे विचार से द्वितीय पक्ष की बात सर्वथा सही थी क्योंकि गुरुकुलों में छात्रों की संख्या कम होती थी। इसी बात को लक्ष्य करके स्वामी जी के अनुयायियों ने "दयानन्द ऐंग्लो वैदिक" स्कूल एवं कालेजों की स्थापना की। इन संस्थाओं में वे सिद्धान्त तथा नियम, जो गुरुकुलों में चलते थे लागू न हो सके, लेकिन आर्यसमाज के प्रमुख लक्ष्यों (आर्यत्व की भावना, हिन्दी का प्रचार) की पूर्ति अवश्य हुई। हिन्दी को प्रोत्साहन देने में डी. ए. वी. संस्थाओं का बहुत बड़ा हाथ है। पंजाब में तो सर्वप्रथम हिन्दी का पठन-पाठन डी. ए. वी. संस्थाओं से ही प्रारम्भ हुआ था। देश को सरदार भक्तसिंह जसे सूरमा देने का श्रेय भी

डी. ए. वी. संस्थाओं को जाता है। आज देश का कोई ऐसा शहर या कस्बा नजर नहीं आता जहां डी. ए. वी. स्कूल अथवा कालेज न हो। डी. ए. वी. संस्थाओं तथा उनके कर्णधारों एवं योग्य स्नातकों के नाम गिनाना आसान नहीं है। इन संस्थाओं का पूरे राष्ट्र में एक जाल-सा बिछा हुआ है। इन्हीं संस्थाओं में से स्वर्गीय विश्वबन्धु जी द्वारा संस्थापित वी. वी. आर. आई. नाम की संस्था है जिसका योगदान हिन्दी के क्षेत्र में अविस्मरणीय है। शोध-योजना डी. ए. वी. की अन्य संस्थाओं में नहीं चलती लेकिन यहां शोध के साथ-साथ हिन्दी एवं संस्कृत साहित्य की पुस्तकों को प्रकाशित करने हेतु अपना विशाल प्रेस भी है। इस संस्था की पत्रिका विश्वज्योति भी हिन्दी जगत् की लगभग ३३ वर्ष से सेवा कर रही है। हिन्दी साहित्य के प्रचार के लिए स्वामी दयानन्द ने कुछ विचारकण प्रदान करने के साथ-साथ अपनी बहुमूल्य रचनाएं भी हिन्दी जगत् को अर्पित की थीं। आज उन्हीं का प्रभाव देखिए जगह-जगह उनके उद्देश्य को पूरा करने हेतु माननीय श्री वेदव्यास जी की अध्यक्षता में सैंकड़ों की संख्या में स्कूल, कालेज तथा संस्थाएँ कार्य कर रही हैं।

विदेश में हिन्दी प्रचार—

उपरोक्त संस्थाओं के अतिरिक्त आर्यसमाज की संस्थाओं के सैंकड़ों पत्र तथा पत्रिकाएं हिन्दी की सेवा में लगे हुए हैं। प्रत्येक का विवरण देना मात्र लेख का आकार बढ़ाना है। हिन्दी पत्रकारिता में आज सबसे आगे यदि कोई है तो आर्यसमाज है। विदेशों में भी हिन्दी की नींव रखने का श्रेय स्वामी जी की शिष्य-परम्परा को ही जाता है। भारतवर्ष में भी अहिन्दीभाषी क्षेत्रों में हिन्दी को पहुंचाने का श्रेय गुरुकुलों के स्नातकों को है। दक्षिण अफ्रीका में स्वामी भवानीदयाल ने हिन्दी प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया था। उनके अतिरिक्त जिन आर्य प्रचारकों ने हिन्दी की ध्वजा को उन्नत किया उनमें भाई परमानन्द और स्वामी शंकरानन्द के नाम विशेषरूप से लिए जा सकते हैं। वहां पर उन महानुभावों के प्रयास से न केवल पत्र-पत्रिकाएं निकाली गईं प्रत्युत आर्य प्रतिनिधि सभा, नेटाल, हिन्दी सम्मेलन और हिन्दी-संघ की भी स्थापना की गई। दक्षिण अफ्रीका के अतिरिक्त जिन विदेशी द्वीपों में हिन्दी का कार्य आर्यसमाज के प्रताप से आगे बढ़ा उनमें पूर्वी अफ्रीका, कीनिया, युगांडा, जंजीबार, टंगानिका, मॉरीशस, फीजी, डच, गायना (सुरीनाम), ट्रिनिदाद, ब्रिटिश गायना तथा लन्दन उल्लेखनीय हैं। श्री सुमन लिखते हैं कि लन्दन में प्रख्यात वैदिक पण्डित सुरेन्द्र शर्मा गौर के सुपुत्र श्री धीरेन्द्र शील ने भी हिन्दी प्रचार व प्रसार का उल्लेखनीय कार्य किया था। फीजी में स्व० अमीचन्द विद्यालंकार और तोताराम सनाढ्य की सेवाएं भुलाई नहीं जा सकतीं। श्याम जी कृष्ण वर्मा और लाला हरदयाल का नाम इस सन्दर्भ में अपना विशेष महत्त्व रखता है।[2] विदेश में जाकर कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह ने विलायत से एक समाचार पत्र निकाला था जो अंग्रेज़ी के अतिरिक्त हिन्दी में भी निकलता था। भारत के इतिहास में वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने विदेश से हिन्दी का समाचारपत्र निकाला था। वे महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रभावित होकर ऋषि के परम भक्त बन गए थे। आर्यसमाज की प्रचार व्यवस्था के प्रभाव के कारण ही आज भी विश्व के विभिन्न कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में हिन्दी की प्रतिष्ठा बनी हुई है, इसका प्रमाण हिन्दी के वे विदेशी विद्वान् हैं जो पीछे सम्पन्न हुए "विश्व हिन्दी सम्मेलन" में भाग लेने के लिए पधारे थे।

पश्चाद्वर्ती आर्यसमाजी विद्वानों ने हिन्दी की काव्य परम्परा में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रभावित होकर ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटकों का विषय समाज की कुरीतियों को बनाया था। प्रख्यात नाटककार और अभिनेता श्री नारायणप्रसाद 'बेताब' एक अच्छे कवि भी थे।

काव्य के क्षेत्र में ही पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' की कृतियां **अनुराग रत्न, वायस विजय,** आदि काव्य साहित्य की निधि हैं। उनके सुपुत्र हरिशंकर शर्मा ने भी **महर्षि महिमा, राम राज्य और घास पात** आदि प्रमुख काव्य हिन्दी साहित्य को प्रदान किये हैं। महर्षि

करवाया है इस लिए कागज़ों को यहीं उठा लाया हूँ। इतनी बड़ी रकम को कहां रखूँ? वहाँ कोई सेफ थोड़े ही है।' त्रिलोचन की इस बात को सुनकर बूढ़े बाप ने कहा था, "तुमको उसी समय कैश बड़े डाकघर में भेज देना चाहिए था, क्योंकि घर में कोई आता है तो कोई जाता है।" अपने बूढ़े बाप की बात को सुन कर त्रिलोचन ने कहा था, 'बापू, हमारे गांव के लोगों की नीयत पर यूं शक मत किया करो।' बूढ़े ने जाती बार उत्तर में कहा था, 'रुपया बड़ों-बड़ों की नीयत खराब कर देता है बेटा!' और एक तीखी दृष्टि गोकुल पर डाल कर खांसता हुआ कमरे से बाहर चला गया था। कुछ देर बाद गोकुल भी चला गया था। भोजन करने के बाद त्रिलोचन अपनी चारपाई पर लेट गया था। जमना भी घर का काम समेटने के उपरान्त उसके पास बिछी दूसरी चारपाई पर बैठ गई थी। बरामदे में त्रिलोचन का बूढ़ा बाप हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। लेटे-लेटे ही त्रिलोचन के मन में विचार आया कि अपनी पत्नी को सौ-सौ के नोट तो दिखा दे, यह सोच कर वह सिरहाने की ओर लपका। ज्यों ही उसने सिरहाना उठाया तो वहां रुपयों वाला लिफाफा नहीं था। त्रिलोचन का चेहरा एकदम पीला पड़ गया। उसने चारपाई और बिस्तर के सब कपड़े झाड़ कर देखे, तकिए को उलटा-पलटा, पर रुपयों वाला लिफाफा नहीं मिला। उसे इस प्रकार उलट-पलट करते देख जमना बोली, 'क्या ढूंढ़ रहे हैं आप?' त्रिलोचन ने कोई उत्तर न दिया, मानों उसने उसकी बात सुनी ही न हो। जमना फिर बोली 'आखिर बात क्या है, क्यों इतने उदास हो उठे हो?' अब त्रिलोचन ने जमना की ओर देखकर कहा, 'तकिए के नीचे मैंने एक सरकारी लिफाफा रखा था। तुम को तो नहीं मिला?'

'नहीं तो, मैं तो इधर आई भी नहीं।'

'और कौन आया था यहाँ?'

'कोई भी नहीं!'

उसके बाद त्रिलोचन कुछ न बोला। रात के समय जमना को गाढ़ी नींद में सोए छोड़ कर त्रिलोचन घर से चला गया और आज तक लौट कर न आया था।

दूसरे दिन गांव का डाकघर न खुल सका। डाकघर के उच्च अधिकारियों ने आकर त्रिलोचन के बूढ़े बाप और जमना को त्रिलोचन के बारे में पूछा और गोविन्द की पासबुक भी देखी। उन्होंने त्रिलोचन पर चोरी और गबन का केस बना कर पुलिस को सूचना भेज दी। पुलिस ने भी त्रिलोचन के बारे में उसके बूढ़े बाप और जमना से पूछताछ की। किन्तु जमना के पास अपनी सिसकियों और त्रिलोचन के बूढ़े बाप के पास अपनी सूखी आखों में छलकते-आंसुओं के सिवा पुलिस के प्रश्नों का कोई उत्तर न था। त्रिलोचन के भाग जाने के कारण पुलिस का सारा शक उसी पर था। गांव के सारे लोग इस घटना से हैरान थे। गोकुल को पुलिस ने पूछा तक न था। त्रिलोचन का फोटो प्रतिमास समाचार पत्रों में छपता। जमना का घर तबाह हो चुका था। त्रिलोचन का बूढ़ा बाप अपने इकलौते पुत्र के बिछोह को सहन नहीं कर पाया और घटना के एक वर्ष उपरान्त 'त्रिलोचन! त्रिलोचन!' कहता अपने प्राण त्याग गया। जमना सूख कर कांटा बन गई। उस पर जवानी आई और आकर चली गई।

घटना के दो वर्ष उपरान्त तक जमना की दस कनाल भूमि नीलाम हो चुकी थी। उसकी बारह कनाल भूमि में से अब दो कनाल भूमि ही शेष बच पाई थी। उसके जीवन के सब सहारे छिन गये थे। वह चरखा कातकर अपना निर्वाह करती। किसी का सूत कातती तो किसी की ऊन। इस कताई की उजरत से उसे जो कुछ मिलता उसी से वह अपना पेट पालती। इसी प्रकार उसने अपनी जवानी के दिन काट डाले। धीरे-धीरे गांव के लोगों की सहानुभूति जमना के प्रति घटती गई। अब कोई विरला व्यक्ति ही जमना का हालचाल पूछता।

उधर गोकुल ने त्रिलोचन का वह रुपया अपने पुत्र विष्णु के विवाह पर खर्च कर डाला था। विवाह के दो वर्ष उपरान्त ही विष्णु का गोकुल से कुछ झगड़ा हो गया और विष्णु ने अपनी रोटी अलग कर ली। गोकुल अब अपना भोजन स्वयं

बनाता था। विष्णु से उसकी बोलचाल वर्षों से बन्द हो चुकी थी। अब उसे त्रिलोचन के साथ किया हुआ विश्वासघात याद आता। रात घण्टों नींद न पड़ती और वह अकेला बड़बड़ाने लगता। गोकुल भी अब बूढ़ा हो चुका था। उसके हृदय से उस शाम का दृश्य, जब उसने रुपयों से भरा लिफाफा उठाया था, एक घड़ी के लिए नहीं भूलता, न जाने कौन-सी चीज़ उसके मन को अन्दर ही अन्दर फटकारती रहती।

तभी सरकार ने गांव में एक आयुर्वेदिक औषधालय की योजना बनाई थी। औषधालय के भवन के लिए भूमि का प्रबन्ध करने हेतु गांव के सरपंच को पत्र आया था। गांव में और भी लोगों की भूमि थी, पर मुफ़्त में अपनी भूमि को देने के लिए कोई भी तैयार न था।

एक दिन गाँव के पांच-सात व्यक्ति जमना के घर गये। जमना अपने आंगन में चरखा कात रही थी। घर की ओर गांव के लोगों को बढ़ता देखकर जमना ने अपना घूंघट सरकाया और झट अन्दर से एक चटाई लाकर बाहर आंगन में बिछा दी। अभिवादन आदि के पश्चात् सभी चटाई पर बैठ गए। जमना ने उनके आने का कारण पूछा। उनमें से सरपंच बोला, 'दादी! हम सब आप से कुछ मांगने आये हैं।' सरपंच की बात सुनकर जमना ने चरखे को घुमाना बन्द कर दिया और बोली, 'बेटा! मेरे पास ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसकी आप सब को आवश्यकता पड़ गई?' सरपंच बोला, 'दादी! हम सबको ही नहीं बल्कि आने वाली सन्तानों को भी उस वस्तु की आवश्यकता है। आपके दान से गांव का बड़ा उपकार होगा, दादी!' 'गांव की सेवा के लिए मुझे प्राण भी देने पड़ें तो मैं अपने आप को धन्य समझूंगी। न जाने पूर्वजन्म में कौन-से पाप का फल भुक्त रही हूँ। क्या चाहते हैं आप लोग मुझ से?'

सरपंच बोला, 'दादी! सरकार गांव में एक औषधालय बना रही है, उसके लिए भूमि की आवश्यकता है।' सरपंच की इस बात को सुनकर जमना कुछ क्षण के लिए चुप रही, सोचने लगी इन सब लोगों की अपनी भूमि होते हुए भी ये लोग मांगने आये हैं। इसका अर्थ यह है कि ये लोग दान का सामर्थ्य ही नहीं रखते और न ही इन सब को दान की महत्ता का पता है। यदि ये मांगने ही आये हैं तो इनको खाली लौटाना धर्म नहीं कहलाता। न जाने पूर्वजन्म में कौन-सा भिखारी मेरे घर से खाली चला गया होगा और जाती बार मुझे भी खाली रहने का शाप दे गया होगा। यह बात सोच कर जमना बोली, 'बेटा! मैं आप सब लोगों को अपने घर से खाली नहीं लौटाऊँगी। मैं अपना सब कुछ गांव को अर्पित कर दूंगी।' सरपंच खुश होकर बोला, 'दादी! जब तक यह गांव बसता रहेगा तब तक आपका यह उपकार गांव वाले कभी न भूलेंगे।'

'यह बात नहीं है, बेटा! उपकार तभी तक याद रहता है जब तक उसको जानने वाले लोग जीवित रहें। उसके उपरान्त लोग उपकार को ऐसे भूल जाते हैं जैसे मकान बनने के उपरान्त उसमें रह रहे लोग मकान बनाने वाले की मेहनत को भूल जाते हैं। पर मैं यह कोई उपकार नहीं कर रही बेटा! यह मेरा कर्त्तव्य है। जिस भूमि पर हम रहते हैं, उस पर बसे शेष लोगों के प्रति हमारा कुछ दायित्व भी है।' यह बात कहकर जमना अपना चरखा कातने लगी और गांव के वे प्रतिष्ठित व्यक्ति प्रसन्न मुद्रा में वापिस लौट गए।

आज गांव में जमना की बड़ी चर्चा थी। दूसरे ही दिन जमना की दो कनाल भूमि की रजिस्ट्री सरकार के नाम करवा दी गई और इसके कुछ दिन उपरान्त उसके खेत में औषधालय के भवन-निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया। जमना को वहां ले जाकर फूल-मालाएँ डाली गईं। त्रिलोचन का भूला हुआ नाम लोगों को याद हो आया। जमना आज बड़ी प्रसन्न थी। गोकुल भी वहीं खड़ा सब कुछ देख रहा था। उसको आज जमना के साथ किया हुआ अन्याय याद हो आया था। वह अपने आपको धिक्कारता हुआ सोचने लगा कि जिस पुत्र के लिए उसने अपने मित्र से विश्वासघात किया था उसने तो उसे विवाह के दो वर्ष उपरान्त ही घर से निकाल

दिया। चाहे कुछ भी हो वह पांच हजार की रकम इकट्ठी करके, जमना को देकर उससे क्षमा मांग लेगा। पर इतनी बड़ी रकम इकट्ठी कर पाना उसके बस की बात नहीं थी। उसने अपनी सारी सम्पत्ति, जो कि पांच तोले सोने के जेवरों के रूप में उसके पास शेष पड़ी थी, बेच कर जमना का रुपया वापस लौटाने की योजना बना ली। इसी योजना के बारे में सोचता हुआ गोकुल अपने घर की ओर चल पड़ा। आज रात उसे नींद न आ सकी। न जाने क्यों?

एक मास के उपरान्त औषधालय का भवन बन कर तैयार हो गया। दवाइयां आईं, डाक्टर तथा कर्मचारी आये, लोगों को गांव में उपचार की सुविधा मिलने लगी। लोग दवाई लेकर सरकार के साथ-साथ जमना का भी धन्यवाद करने लगे। कोई कहता, 'भाई यदि जमना भूमि न देती तो औषधालय कसे बन पाता।' तो कोई कहता, 'गांव की सुविधा के लिए गांव वालों को भूमि तो देनी ही पड़ती है। यदि गांव वाले सरकार को सहयोग न दें तो सरकार गांव के लोगों को सुविधासम्पन्न कैसे करे।' कोई कहता, 'बेचारी पर ईश्वर ने भी दया नहीं की। त्रिलोचन [illegible]

पुत्र समान ही समझता है और सुयोग्य वर से उसका पाणिग्रहण-संस्कार करने पर, उससे जो लड़का पैदा होता है उसको अपना पौत्र तथा सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मानता है।[2] एतरेय उपनिषद् (२.३) में कहा गया है कि नारी हमारी पालना करती है इसलिए इसकी पालना करना हमारा परम कर्त्तव्य है। बृहदारण्यक उपनिषद (६.४.१७) में कन्या के विदुषी होने तथा उसके सुखी जीवन की कामना के लिए गर्भकाल से ही कुछ विशेष विधानों का विवरण दिया गया है। एक विद्वान् का कथन है कि यद्यपि हिन्दु समाज समय के विभिन्न पड़ावों से गुजरा है फिर भी नारी ने शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान निरन्तर बनाये रखा है।[3]

और पैसों वाला वह खाली लिफ़ाफ़ा, जो उसने त्रिलोचन के सिरहाने के नीचे से चुराया था, अपने ट्रंक में सम्भाल कर रखा था।

माघ का महीना था। जमना को पांच-छः दिन से बुखार था। फिर भी उसने अपना नित्यप्रति का काम, चरखा कातना और अपने पति के चित्र के आगे धूप जलाना बन्द नहीं किया था। दिन के दस बज रहे थे, पहले की भान्ति उसने अपना चरखा बाहर निकाला, आसन बिछाया, चौकी पर पति का चित्र सजाकर उसके आगे धूप जलाया और चरखा कातने लगी। उसका मन आज बड़ा उदास था। न जाने क्यों? उसे आज अपने जीवन की सारी कहानी याद आ रही थी। कभी-कभी उसकी आंखों में आँसू छलक पड़ते। वह अकेली विचारों में डूबी कुछ सोच रही थी। तभी खुंटे के सहारे चलता हुआ गोकुल आ पहुंचा। आंगन में बिछी चारपाई पर बैठता हुआ वह बोला, 'भाभी! मैं आप से क्षमा ……।' इतना कहते ही गोकुल फफक पड़ा। आगे के शब्द उसके गले में ही अटक गए। जमना ने हैरानी से गोकुल की ओर देखा, दो बड़े-बड़े आँसू [illegible] से ढलक कर [illegible]

[illegible] राजन्याभ्याꣳ) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हम ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि [=स्त्री आदि] (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है, अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुना कर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों। कहिये! अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा। क्योंकि 'नास्तिको वेदनिन्दकः' [मनु०, २.११] ……।"[2]

वस्तुतः समाज में दोनों तरह के लोग होते थे—शिक्षित एवं अशिक्षित। इसलिए शिक्षा का यह अन्तर स्त्रियों में पाया जाना स्वाभाविक ही था।

से परदा खुलने पर होती है। तब मनुष्य के धैर्य का बांध टूट जाता है और मनुष्य उस बांध में आई बाढ़ के साथ बह जाता है। यही दशा जमना की थी। ज्यों-ज्यों गोकुल बात सुनाता गया, जमना की आँखें फैलती गईं। ज्यों ही गोकुल की बात खत्म हुई जमना के मुख से एक हृदयविदारक चीख निकली, उसके हाथ-पैर कांप उठे, हाथों में थमा रुपयों का लिफ़ाफ़ा नीचे गिर पड़ा। सारे नोट बिखर गए। बिखरे हुए नोट एक बहुत पुरानी कहानी कह रहे थे। आँसू-भरी आँखें लिए हुए गोकुल उठा और चुपचाप बाहर निकल गया। पर जमना जहां बैठी थी, वहीं बैठी रह गई। दोपहर हुई, सांझ ढली, रात बीती, पौ फटी, सवेरा हुआ, पर जमना न उठी। गोकुल की बातें उसके कानों में गूंजती रहीं।

दूसरे दिन एक साधु ने 'राम ! राम !' कहते हुए जमना के घर में प्रवेश किया। दीवार के सहारे बैठी जमना, उसकी फटी आँखें, निश्चल शरीर और आगे बिखरे नोट देख कर वह धक्-सा रह गया। आगे बढ़ कर उसने जमना को हिलाया लेकिन जमना की समाधि पूरी हो चुकी थी। अचानक साधु की नज़र नोटों वाले लिफ़ाफ़े पर पड़ी, वह हैरान रह गया, पूरे का पूरा अतीत उसकी आँखों के आगे घूम गया। यह तो वही लिफ़ाफ़ा है जिसके कारण उसे गांव छोड़ना पड़ा था, साधु बन कर दर-दर घूमना पड़ा था। उसने झट से लिफ़ाफ़ा उठाया, नोट गिने, पूरे पाँच हज़ार रुपये थे। लिफाफा लेकर वह गोकुल के घर की ओर चल पड़ा। गोकुल घर नहीं था। उसने गोकुल के आंगन में बिछी चारपाई पर लिफ़ाफ़ा रखा और बाहर निकल गया।

कुछ देर बाद सारे गांव में जमना के मरने की खबर फैल गई। जमना का जनाज़ा उठा, पर न तो वह साधु और न ही गोकुल उस जनाज़े में शामिल हुआ और न ही उस दिन के बाद किसी ने उन्हें देखा।

—गांव तथा डाकघर फतेहपुर, तहसील नूरपुर, कांगड़ा (हि० प्र०)

आद...

उनके आने का कारण पूछा। ...

'दादी ! हम सब आप से कुछ मांगने आये हैं।' सरपंच की बात सुनकर जमना ने चरखे को घुमाना बन्द कर दिया और बोली, 'बेटा ! मेरे पास ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसकी आप सब को आवश्यकता पड़ गई ?' सरपंच बोला, 'दादी ! हम सबको ही नहीं बल्कि आने वाली सन्तानों को भी उस वस्तु की आवश्यकता है। आपके दान से गांव का बड़ा उपकार होगा, दादी !' 'गांव की सेवा के लिए मुझे प्राण भी देने पड़ें तो मैं अपने आप को धन्य समझूंगी। न जाने पूर्वजन्म में कौन-से पाप का फल भुक्त रही हूँ। क्या चाहते हैं आप लोग मुझ से ?'

सरपंच बोला, 'दादी ! सरकार गांव में एक औषधालय बना रही है, उसके लिए भूमि की आवश्यकता है।' सरपंच की इस बात को सुनकर जमना कुछ क्षण के लिए चुप रही, सोचने लगी इन सब लोगों की अपनी भूमि होते हुए भी ये लोग

...

अपना चरखा कातने लगी और गांव के वे प्रतिष्ठित व्यक्ति प्रसन्न मुद्रा में वापिस लौट गए।

आज गांव में जमना की बड़ी चर्चा थी। दूसरे ही दिन जमना की दो कनाल भूमि की रजिस्ट्री सरकार के नाम करवा दी गई और इसके कुछ दिन उपरान्त उसके खेत में औषधालय के भवन-निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया। जमना को वहां ले जाकर फूल-मालाएँ डाली गईं। त्रिलोचन का भूला हुआ नाम लोगों को याद हो आया। जमना आज बड़ी प्रसन्न थी। गोकुल भी वहीं खड़ा सब कुछ देख रहा था। उसको आज जमना के साथ किया हुआ अन्याय याद हो आया था। वह अपने आपको धिक्कारता हुआ सोचने लगा कि जिस पुत्र के लिए उसने अपने मित्र से विश्वासघात किया था उसने तो उसे विवाह के दो वर्ष उपरान्त ही घर से निकाल

वैदिक काल में नारी-शिक्षा : एक तथ्यपरक विश्लेषण

प्रवीणसिंह राणा

भारतीय समाज में नारी को गृहलक्ष्मी माना गया है। घर ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार इसके बिना साररहित है स्त्री के बिना पुरुष अधूरा है। वैदिक काल में पत्नीविहीन यजमान को यज्ञ करने का अधिकारी नहीं समझा जाता था।[1] अथर्ववेद (६. ३. २०) में नारी को खिली हुई कली की संज्ञा देते हुए घर के अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण दर्शाया गया है। जन-विस्तार में भी पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्राचीन काल में प्रत्येक गृहस्थी को कन्या वाञ्छनीय थी। आचार्य यास्क ने निरुक्त (४. २) में 'कन्या कमनीया भवति' कह कर उसे 'कमु' धातु से सिद्ध करके 'सबके द्वारा चाही जाने वाली' कहा है। ऋग्वेद (८. ३१. ८) में पुत्र और पुत्री की समान रूप से कामना करता हुआ पिता सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने की इच्छा करता है। पुत्रहीन होने पर पिता पुत्री को पुत्र समान ही समझता है और सुयोग्य वर से उसका पाणिग्रहण-संस्कार करने पर, उससे जो लड़का पैदा होता है उसको अपना पौत्र तथा सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मानता है।[2] एतरेय उपनिषद् (२. ३) में कहा गया है कि नारी हमारी पालना करती है इसलिए इसकी पालना करना हमारा परम कर्त्तव्य है। बृहदारण्यक उपनिषद् (६. ४. १७) में कन्या के विदुषी होने तथा उसके सुखी जीवन की कामना के लिए गर्भकाल से ही कुछ विशेष विधानों का विवरण दिया गया है। एक विद्वान् का कथन है कि यद्यपि हिन्दु समाज समय के विभिन्न पड़ावों से गुजरा है फिर भी नारी ने शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान निरन्तर बनाये रखा है।[3]

वैदिक साहित्य और नारी-शिक्षा—

वैदिक काल से ही स्त्री का शिक्षित होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। ऋग्वेद (३. ५५. १६) में कहा गया है कि सुशिक्षित युवती कन्या का पाणिग्रहण-संस्कार उसी के समान सुशिक्षित नवयुवक के साथ सम्पन्न होना चाहिए। प्राचीन श्रुति-वचन 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः' के उत्तर में स्वामी दयानन्द जी के विचार यहाँ उद्धरणीय हैं, "सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआं में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने-सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है।"[4] इस मन्त्र (यजु०, २६. २) पर स्वामी जी का विश्लेषण द्रष्टव्य है—"(ब्रह्मराजन्याभ्याँ) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हम ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि [=स्त्री आदि] (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है, अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुना कर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों। कहिये ! अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की ? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा। क्योंकि 'नास्तिको वेदनिन्दकः' [मनु०, २. ११] ...... ।"[5]

वस्तुतः समाज में दोनों तरह के लोग होते थे—शिक्षित एवं अशिक्षित। इसलिए शिक्षा का यह अन्तर स्त्रियों में पाया जाना स्वाभाविक ही था।

यही कारण है कि धर्मसूत्रकार हारीत ने स्त्रियाँ दो प्रकार की बताई हैं—ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू।[६] ब्रह्मवादिनी नारियाँ उपनीत होती थीं जबकि सद्योवधू नारियाँ अपनी शैशवावस्था से ही संस्कार-शून्य और अशिक्षित होती थीं। हारीत के मतानुसार जिस प्रकार शूद्र अपने जीवन में अशिक्षित एवं संस्कारशून्य रहता है उसी प्रकार स्त्रियों के लिए ऐसा होना उचित नहीं है।[७] हारीत ने इस तथ्य को और भी स्पष्ट किया है। उसका कहना है कि सद्योवधू स्त्रियों को बचपन में शिक्षा प्राप्त न हो सकने से उनके विवाह के समय उपनयन या यज्ञोपवीत धारण करवा कर, उन में उत्तम संस्कार भर दिये जाएँ।[८] इसके अतिरिक्त हारीत ने अपनी भूमिका में ही कहा है कि नारी की शिक्षा पुरुष की शिक्षा से भी अधिक महत्त्व की है, क्योंकि उसके गर्भ से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य गुण-सम्पन्न बच्चे जन्म लेते हैं। शूद्र-योनि में इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति जन्म नहीं लेते। अतः स्त्री को सम्पूर्ण संस्कार कराने ही चाहिएं।[९]

कन्या का उपनयन संस्कार—

अथर्ववेद (११. ५. १८) में कहा गया है कि जसे लड़के ब्रह्मचर्य के सेवन से सम्पूर्ण विद्या को प्राप्त करके, विदुषी युवती से विवाह करते हैं, उसी तरह से कन्या भी ब्रह्मचर्य के सेवन से वेदादि उत्तम विद्या पाकर युवावस्था में अपने समान विद्वान् पुरुष को प्राप्त होवे।[१०] अतः यहाँ एक बात स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्त्री को पुरुष के समान ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। शिष्य और शिष्या को ब्रह्मचर्याश्रम में वास करने से पूर्व आचार्य और आचार्या उनका उपनयन संस्कार करके उनको इस संस्कार की महत्ता बताते थे।[११] ऋग्वेद (१०.१०८.४) के अनुसार उपनीत स्त्रियां अनेक कठिन कार्यों को करने की सामर्थ्य रखती हैं। कात्यायन का कथन है कि जो स्त्रियाँ उपनीत, विदुषी और शक्तिशालिनी हैं वे यज्ञादि कार्य सम्पन्न करें।[१२] गोभिल का स्पष्ट निर्देश है कि यज्ञोपवीत धारण करने के उपरान्त ही नारी यज्ञ के आचमन आदि [illegible] सम्पन्न करे।[१३] अतः स्पष्ट है कि आचार्या शिष्या को शिक्षा प्रदान करने से पूर्व उसका उपनयन संस्कार करती तथा इस संस्कार की उपयोगिता बताती है ताकि वह विदुषी तथा शक्तिशालिनी बने।

(१) भाषा और साहित्य का ज्ञान—

वैदिक साहित्य में हमें अनेक मन्त्र एवं सूक्त ऐसे मिलते हैं जिन का दर्शन ऋषिकाओं ने किया है। कक्षीवान् की पत्नी घोषा का नाम ऋग्वेद में बहुत आता है।[१४] ऋग्वेद के दो सूक्तों (१०. ३९; ४०) का दर्शन घोषा ने किया था। लोपामुद्रा ने अपने पति अगस्त्य के साथ संयुक्त रूप से एक सूक्त के कुछ मन्त्रों का दर्शन किया था।[१५] कक्षीवान् की एक अन्य पत्नी, रोमशा की स्तुति में भी ऋग्वेद में एक मन्त्र आता है जहाँ उसको गन्धार की भेड़ों के समान नुक्सानरहित तथा आज्ञाकारी बतलाया है।[१६] ऋग्वेद (१०. ८५) में सविता की पुत्री सूर्या को भी एक ऋषिका की संज्ञा दी गई है जो स्वयं ही सोम के साथ अपने विवाह का विवरण देती है। ऋग्वेद (१०. १४५) में इन्द्राणी, जो इन्द्र की सशक्त पत्नी कही गई, स्वतन्त्र रूप से 'सपत्नीबाधनम्' नामक सूक्त का दर्शन करती है। इस सूक्त के मन्त्रों का अध्ययन करने से पता चलता है कि इन्द्राणी ने इन मन्त्रों का दर्शन एक ओषधि को खोदते समय किया था, जिस से वह अपने पति इन्द्र के ऊपर जमे हुए सपत्नी के प्रभाव को समाप्त करना चाहती थी। ऋग्वेद में इन्द्र की माँ को भी एक सूक्त (१०. १५३) की ऋषिका कहा गया है। यहाँ एक बात स्पष्ट है कि इन्द्र के सभी सम्बन्धी विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे। एक अन्य तथ्य का समर्थन यहाँ स्वतः हो जाता है कि वैदिक काल में उच्च कोटि के परिवारों की स्त्रियाँ भी वेदादि उच्च-स्तरीय-शिक्षाप्राप्त थीं। ब्रह्मा की पत्नी, जुहू को ऋग्वेद के सूक्त (१०. १०९) की दर्शनकर्त्री कहा गया है। ऋषिका सार्पराज्ञी ऋग्वेद के सूक्त (१०. १८९) में सूर्य को सम्बोधित करती है। इसके अतिरिक्त श्रद्धा (ऋग्०, १०. १५१), ममता (ऋग्०, ६. १०. २), यमी (ऋग्०, १०. १०), उर्वशी (ऋग्०, १०, ९५) इत्यादि ऋषिकाओं का नाम ऋग्वेद में आता है। ऋग्वेद की इन ऋषिकाओं की बृहत्-सूची बृहद्देवता के २४वें अध्याय में भी

प्राप्त होती है। उपर्युक्त सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक काल में स्त्रियाँ उस समय की भाषा, साहित्य एवं प्रचलित परम्पराओं से सुपरिचित थीं। कन्या के लिए इस तरह का ज्ञान प्राप्त करना अभीष्ट था। विद्वान् मजुमदार का कथन है कि उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी आदि विदुषियों के नाम पाये जाते हैं जो दार्शनिक तथा ऐतिहासिक सिद्धान्तों की पण्डिता थीं।[१७]

(२) गान-विद्या

वैदिक साहित्य में साम-गान पाये जाते हैं और कन्या को ब्रह्मचर्यकाल से ही गान-विद्या का अभ्यास कराया जाता था। ऋग्वेद (९. ६६. ८) में स्त्रियों का उत्सवों में गाने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के ही एक अन्य सन्दर्भ में स्त्रियाँ अपने पतियों को संगीत द्वारा प्रसन्न करती हुई दर्शायी गयी हैं।[१८] मैत्रायणी (३. ७. ३), तैत्तिरीय (५. ६. ५) संहिताओं, शतपथब्राह्मण (३. २. ४. ६) तथा ऐतरेय आरण्यक (५. १. ५) इत्यादि ग्रन्थों में अनेक छन्द तथा संगीत के उपकरणों का स्पष्ट रूप से उल्लेख पाया जाता है। लाट्यायन श्रौ० सू० (४. २. ५) में स्त्रियों का समूह में बैठ कर उनके क्रमश: गाने और बजाने का वर्णन मिलता है। स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्त्री के लिए संगीत-विद्या अनिवार्य थी, जो उसे बचपन से ही पढ़ाई जाती थी। वैदिकोत्तर-काल में गाना, बजाना और नाचना अप्सराओं और गन्धर्वों की जीविका का साधन बन गया था।

(३) नृत्य-कला

नृत्य-कला का संगीत के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध है। वैदिक काल में कन्या को संगीत के साथ-साथ नृत्य-कला की शिक्षा भी दी जाती थी। ऋग्वेद (१. ९२. ४) में उषा को नर्तकी बतलाया है, जो सूर्य के सामने नृत्य प्रदर्शित करती है। इसके अतिरिक्त उषा को, नृत्य करने वाली कन्या की तरह, शोभन नाच करने वाली कहा गया है।[१९]

(४) कविता तथा नाट्य-शिक्षा

वेद छन्दोबद्ध रचना है और मन्त्रों में निहित अर्थ को भली-भांति समझने के लिए छन्दज्ञान अनिवार्य है। कन्याओं के वेद पढ़ने के आदेश से (यजु०, २६. २) स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनको वैदिक छन्द-शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। ऋषिकाओं द्वारा साक्षात् ऋग्वेद के सूक्तों से, उस समय की कन्याओं का छन्दज्ञान परिलक्षित होता है। काव्य-संरचना के अतिरिक्त स्त्री को नाट्यशास्त्र का भी पूर्ण ज्ञान था। यम-यमी संवाद (ऋग्० १०. १०), पुरूरवा-उर्वशी संवाद (ऋग्०, १०. ९५) तथा सरमापणि-संवाद (ऋग्०, १०. १०८) आदि अनेक नाटकीय-संवाद उस समय की स्त्री की नाट्य-निपुणता का परिचय देते हैं।

(५) शिल्प-कला

अथर्ववेद (१०. ७. ४२) के अनुसार कन्याएँ आत्मनिर्भरता के पक्ष को ध्यान में रखती हुई बुनाई इत्यादि का कार्य भी करती थीं, ऐसा यहाँ स्पष्ट रूप से जान पड़ता है। विद्वान् टॉड (Tod) का कथन है कि प्राचीन भारत में स्त्री अपने पति की अर्थव्यवस्था के अन्त: तथा बाह्य क्षेत्र में पूर्ण योगदान देती थी।[२०]

(६) राजनैतिक शिक्षा

वैदिक काल में स्त्री आज की भांति राजनीति में भी पूर्णरूपेण सक्रिय थी। वह आम जन-सभाओं को सम्बोधित करती तथा लोगों के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करती थी। वैदिकोत्तर काल में स्त्री ने राज्यप्रशासन का कार्यभार भी सम्भाला। राजा हर्ष की बहन राज्यश्री ने अपने पति के देहान्त के उपरान्त मन्त्रिपरिषद् में सम्मानयुक्त पद पर आसीन होकर अपने भाई को राज्य के प्रशासनिक कार्यों की सम्पन्नता में सहयोग दिया था।[२१]

(७) धार्मिक-शिक्षा

कन्या को ब्रह्मचर्यकाल में ही अन्य विद्याओं के साथ-साथ धार्मिक अग्निहोत्र, सन्ध्यावन्दनादि की भी शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेद (१. ३. ११) 'सरस्वती सभी प्रकार के यज्ञों को धारण करे', ऐसा कह कर स्त्री की धार्मिक-शिक्षा का स्पष्टीकरण करता है।

(८) युद्ध-सम्बन्धी शिक्षा

वैदिक काल में आर्य और दास दो तरह के जन-समूह थे और इनमें अपनी-अपनी नीतियों को लेकर हमेशा ही परस्पर कोई-न-कोई अस्थिरता एवं जान-माल की सुरक्षा की चिन्ता बनी रहती थी। इस तरह की परिस्थितियों में अगर स्त्री अपनी सुरक्षा में

खड़ी न हो सके तो समाज पर बोझ-सी समझी जाती थी। इसलिए प्रत्येक स्त्री को कम-से-कम धनुर्विद्या का तो पूर्ण ज्ञान कराया जाता था। समय पड़ने पर स्त्री अपने पति की सहायता के लिए युद्धक्षेत्र में भी उतरती थी। खेल राजा की पत्नी विश्पला इसका स्पष्ट प्रमाण है। विश्पला अपने पति के साथ युद्धमैदान में उतरी थी। युद्धक्षेत्र में ही उसने अपनी एक टांग खोयी थी जिसके स्थान पर अश्विनीपुत्रों ने लोहे की टाँग लगाई थी।[२२] मुद्गल की पत्नी मुद्गलानी भी एक ऐसा उदाहरण है जिसने युद्ध-शिक्षा पाई थी। उसने युद्धक्षेत्र में अपने पति के रथ का संचालन किया था।[२३] इसी सन्दर्भ (ऋग्०, १०. १०२. २) में यह भी स्पष्ट किया गया है कि मुद्गलानी ने अपने पति के शत्रु को भी जीता था। इसके अतिरिक्त स्त्री को युद्ध-शिक्षा प्रदान करने के क्षेत्र में दास वर्ग (non-Aryan group) भी पीछे नहीं था। दास वर्ग के लोगों ने अलग से स्त्रियों की सेना बनाई थी।[२४] ऋग्वेद (१. ३२. ९) में इन्द्र द्वारा वृत्र की मां को, जो युद्ध में अपने पुत्र के पक्ष में लड़ रही थी, मारे जाने का वर्णन आता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक काल की नारी ज्ञान की सभी शाखाओं से सुपरिचित थी और उसको बाल्यकाल से ही उदार भावना से शिक्षा प्रदान की जाती थी।

—साधु आश्रम, होश्यारपुर

---

१. अयज्ञीयो वैष योऽपत्नीकः। शत० ब्रा०, ३. ३. ३. १; देखिए त० ब्रा०, २. २. २. ६; Shrivastava, Ashok Kumar, Hindu society in the sixteenth century, p. 104.
२. ऋग्०, III. ३१. १.
३. Prabhu, Hindu social organization, pp. 257, 266; See also Mitter, The position of women in Hindu Law, p. 63.
४. सत्यार्थप्रकाश, पृ० ६८; वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, वि० सं० २०२८; यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय०॥ यजु०, २६. २।
५. सत्यार्थप्रकाश, पृ० ६९।
६. द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। हारीत ध० सू०, २१. २०-२४.
७. न शूद्रसमाः स्त्रियः। हारीत ध० सू० (भूमिका)।
८. सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहकाले कथंचिदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः।
(हारीत ध० सू०, २१. २०-२४)
९. न हि शूद्रयोनौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या जायन्ते तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्याः। हारीत ध० सू० (भूमिका)।
१०. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
(अथर्व०, ११. ५. १८)
११ मनु०, २. ६६।
१२. कर्मप्रदीप, १. ८. ८।
१३. गोभिलगृह्यसूत्र, १. १. २।
१४. ऋग्०, १. ११७. ७; १०. ४०. ५।
१५. ऋग्०, १. १७९।
१६. सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका। ऋग्०, १. १२६. ७।
१७. Madhavan and Majumdar, Great women of India, p. 30.
१८. अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत। ऋग्०, ९. ५६. ३
१९. अधिपेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव वर्जहम्। ऋग्०, १. ९२. ४
२०. Tod, Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. II, pp. 710-11.
२१. चटर्जी, 'हर्षवर्धन', पृ० 87; See also Altekar, The position of women in Hindu Civilization, p. 22.
२२. चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा
खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै
धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥
ऋग्०, १. ११६. १५
२३. रथीरभून्मुद्गलानी। ऋग्०, १०. १०२. २
२४. स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः। ऋग्०, ५. ३०. ९

एक वैदिक दृष्टि—

मनोभाव

डॉ॰ गणेश भारद्वाज

सम्पूर्ण विश्व-साहित्य मानव-मन के भावों की अभिव्यंजना है। अतएव मनुष्य इन भावों की उत्पत्ति तथा इनके भेदों, उपभेदों की गवेषणा में दीर्घकाल से निरत है। प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हीं भावों की भित्ति पर साहित्यशास्त्र का विकास किया है। जम्बू द्वीप में तो साहित्यशास्त्र की एक विशेष परम्परा का विकास हुआ है। किन्तु इस लेख में वैदिककालीन आचार्य शौनक तथा भरत की ही भाव-मीमांसा का दिग्दर्शन प्रस्तुत है।

आचार्य शौनक ने 'बृहद्देवता' नामक ग्रन्थ में ऋग्वेद के मन्त्रों का विश्लेषण करते हुए निम्नलिखित छत्तीस भावों की परिगणना की है—स्तुति, प्रशंसा, निन्दा, संशय, परिदेवन, स्पृहा, आशीष, दम्भ, याचना, प्रश्न, प्रैष, प्रवल्हिका, नियोग, अनुयोग, श्लाघा, विलाप, वृत्तान्तकथन, वार्तालाप, पवित्र आख्यान, कामनात्मक श्लोक, नमस्कार, प्रतिरोध, संकल्प, प्रलाप, उत्तर, प्रतिषेध, उपदेश, प्रमाद, अपह्नव, आमन्त्रण, संक्षोभ, विस्मय, आक्रोश, अभिष्टव, आक्षेप और शाप।

परवर्ती आचार्यों के उपजीव्य आचार्य भरत ने अपने अमर ग्रन्थ 'नाटचशास्त्र' में भावों का विस्तृत विवेचन किया है :—

भाव—भाव इस भौतिक जगत् की व्यापक सत्ता है, वह चित्तवृत्ति के रूप में प्राणिमात्र में वैसे ही व्याप्त है जैसे पार्थिव तत्त्व में गन्ध। हृदय में चित्तवृत्ति के रूप में स्थित होने के कारण ये भाव कहे जाते हैं, अथवा वाचिक, आंगिक, और सात्त्विक भावों से युक्त काव्यार्थों को ये भावित करते हैं। इस भावन व्यापार के कारण ही ये भाव होते हैं। नाटच-प्रयोग के प्रसंग में कवि, प्रयोक्ता और प्रेक्षक, तीनों में ही भाव व्याप्त है। कवि लोकचरित की उद्भावना करता है। इस उद्भावना में वह अपने भावों को देशकाल के विभेदों से मुक्त साधारणीकृत रूप में काव्य-कौशल द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए सर्वहृदय-संवेद्य बनाता है। अभिनेता आंगिक, वाचिक, सात्त्विक एवं मुखराग आदि अभिनयों से सम्पन्न कर कवि-कल्पित भावों का ही भावन करता है, परन्तु साधारणीकृत भावन-व्यापार द्वारा ही वह प्रेक्षक की चित्तवृत्ति का भावन करता है, परिव्याप्त करता है। इस भावन-व्यापार के द्वारा ही प्रेक्षक के हृदय में रसानुभूति होती है और वे भाव के रूप में अभिहित होते हैं।

भरत का रसविषयक प्रसिद्ध सूत्र है—'तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव के संयोग से रस-निष्पत्ति होती है। इस सूत्र में स्थायी भाव का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु वह स्वयं आक्षिप्त हो जाता है। वस्तुतः उसी की रस-रूप में अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रकार भरत मुनि सात्त्विक भावों का अनुभावों में अन्तर्भाव कर लेते हैं।

काव्य-रस और उनचास भाव

भरत ने नाटचशास्त्र में उनचास भावों की परिकल्पना की है। इनमें आठ स्थायी, तेतीस संचारी और आठ सात्त्विक भाव हैं। जो भाव मनुष्य में प्रधान रूप से वर्तमान रहते हैं उसके चरित्र-गठन में योग देते हैं, वे स्थायी भाव होते हैं। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय सहित इनके आठ भेद माने गए हैं। इसके

(शेष पृष्ठ ४२ पर)

'विचार' पर विचार

सदानन्द पेठे

जब-जब मैं 'विचार' पर विचार करता हूं, तब-तब उसकी अमेय सामर्थ्य पर ताज्जुब करता हूं। किसी विचारक ने विचार की सामर्थ्य को करनी या आचार की शक्ति से अधिक माना है। जैसे-जैसे मैं विचार की बेजोड़ करामात देखता जाता हूं, मेरे मन में उस विचार के प्रति बड़ी आत्मीयता का तथा स्नेहादर का भाव पैदा होता जाता है; फिर वह विचार मेरा अपना हो या किसी दूसरे का हो वह मुझे मनचीन्हा मीत-सा लगता है। भगवान् ने आदमी को विचार करने की शक्ति देकर इतना बड़ा उपकार किया है कि उसका मोल-तोल नहीं किया जा सकता। अलबत्ता, यहाँ पर यह कहने की जरूरत नहीं कि 'विचार' शब्द से सुविचार, संविचार या विधायक विचार ही अभिप्रेत है।

उस दिन इस विस्मयकारी विचार पर विमर्श करने के लिए मुझे विवश किया रामायण की सीता और रावण के संदर्भ में दिए गए एक कथा-प्रसंग ने। एक बार यों ही जी में आया कि राम-जन्मोत्सव निमित्त रामकथा-विषयक पुस्तक पढ़ लूं। यों तो इसके पहले मैंने वह पुस्तक तीन-चार बार पढ़ी थी। मगर एक ही पुस्तक बार-बार विचारपूर्वक पढ़ने से चर्चित विषय का चित्र मानस-पटल पर अधिकाधिक बारीकियों के साथ चित्रित होता जाता है और पाठक-आशय की गहराई में अधिकाधिक आसानी से उतरता जाता है, इस अनुभव से मैं उसे पढ़ने को विशेष रूप से लालायित हो उठा था।

रावण सीता को अपनी लाख कोशिशों के बावजूद न हमेशा के लिए बन्दी बना कर रख सका, न उसे कत्ल कर सका। सीता का सतीत्व लंका के निवास-काल में अभंग रहा, इसके जो भी अनेक कारण हों, उनमें से एक है—रावण का एक सूक्ष्म तथा महत्त्वपूर्ण विचार, जो उसके और कुम्भकर्ण के एक संवाद में व्यक्त हो गया है।

एक बार रावण ने अपने बन्धु कुम्भकर्ण से कहा, "मैं खूब कोशिश करता हूं, मगर सीता मेरे वश में नहीं आती। वह सदा-सर्वदा राम के चिंतन में डूबी रहती है।" इस पर कुम्भकर्ण ने सुझाया—"तुम रामरूप धारण करके उसके पास जाओ। तुम्हारे रामरूप पर वह लुब्ध होगी।" रावण ने जवाब में कहा—"अरे, मैंने वैसा भी करके देखा, लेकिन रामरूप धारण करने से लगने लगता है कि दूसरे की धर्मपत्नी का अपहार करना उचित नहीं!"

रामरूप धारण करने पर रावण जैसे कामान्ध राक्षस के मन में भी राम के आदर्श का विचार पैदा हो और वही विचार उसे सीता के सतीत्व को भंग करने के गर्हित कर्म से रोके, यह बात निश्चय ही महत्त्व की है। कुछ देर के लिए भी क्यों न हो, आदर्श का अभिनयन और चिन्तन व्यक्ति को अनादर्श के पथ पर बढ़ने से रोक सकता है।

सद्विचार का असर असद्विचार वाले व्यक्ति के मन पर न्यूनाधिक मात्रा में पड़ता भी है और फलतः अन्यथा असंभव लगने वाली बातें संभव हो भी जाती हैं।

ऐसा ही एक समयानुकूल विचार एक राजपुत्र को आड़े समय में रक्षा देने में सहायक हुआ। स्वर्गीय पं० सुदर्शन जी के 'पत्थरों का सौदागर' उपन्यास का एक कथा-प्रसंग है—

सिकन्धीर रियासत के महाराज पृथ्वीचन्द्र बहादुर अपने प्रजाहितविषयक कर्त्तव्यों की ओर से पीठ फेर कर, प्रजा की बदहाली की परवाह न कर, दशहरे के उत्सव में पानी का तरह पैसा बहाया करते थे, रंग-विलास में, नशाबाज़ी में पसा उड़ाते

थे। यह बात उनके पुत्र कुँवर सूर्यप्रकाशचन्द्र महाराज को मन्ज़ूर नहीं थी। वे प्रजाहित के हिमायती थे। इस विरोध का नतीजा यही हुआ कि राजपुत्र को रियासत से बाहर हो जाना पड़ा—दिशाहीन दशा में! उनके पास सिर्फ़ तीन हज़ार रुपये थे। यानि राजपुत्र का एक महीने का मामूली खर्च! फिर आगे क्या?

अब राजपुत्र, राजपुत्र नहीं थे, वह तो मामूली आदमी बन चुके थे! ऐसे समय में उनका विवेक उनके काम आ सकता था। उन्होंने सोचा—'मैं अजमीर के जिस चीफ्स कालेज में पढ़ता था, वहाँ का क्लर्क अपनी एक सौ रुपये की मासिक तनख्वाह में अपने पूरे परिवार का गुज़ारा कर सकता था। मैं तो अकेला हूँ, क्या मेरे लिए यह एक सौ रुपया महीना काफ़ी नहीं होगा?' यह छोटा-सा विचार राजपुत्र के मन में बिजली की तरह कौंध गया और उसने तुरन्त उस विचार पर अमल किया। तीन हज़ार रुपये में तीस महीने का प्रबंध हो जाने से राजकुमार सूर्यप्रकाशचन्द्र निश्चिन्त हो गए।

मेरी पुण्यश्लोक माता का किस्सा इस विषय के संदभ में पठनीय है। वह अपने विवाह के समय तक पूर्णतया अनपढ़ यानि निरक्षर थी। फिर भी वैवाहिक जीवन के शुरू के दिनों में उसे मेरे पिता जी की नौकरी के दौरान बम्बई शहर में जाना पड़ा था। एक दिन गली में से गुजरने वाले किसी पुस्तक-विक्रेता की आवाज़ उसके कानों में पड़ी। करीब पचहत्तर साल पहले की बात है। पीहर-ससुराल के श्लाघ्य रिश्ते पर रचित किसी छोटे काव्य की पुस्तक वह बेच रहा था। मुँह से वह पुस्तक का नाम पुकार कर बोल रहा था—"माहेरचे मूल, सासरची पाठवणी—किंमत एक आणा" (मराठी) अर्थात् 'पीहर का बुलावा, ससुराल की भिजवाई—कीमत एक आना!'

उस पुस्तक को खरीद कर पढ़ने के लिए मेरी माता का जी ललचाया, मगर वह पढ़ना नहीं जानती थी। अतः वह हताश बनी, पर किसी न किसी दिन अक्षरज्ञान कर लेने के विचार ने उसके मन में जड़ पकड़ी।

एक बार वह देहात में अपने पिता के घर गई थी। वहाँ दूर के रिश्ते के एक चचेरे भाई से, जो कि तब केवल स्कूली बच्चे थे, उसने प्रारम्भिक अक्षरज्ञान हासिल कर लिया और पठन का अभ्यास इतना बढ़ाया कि आगे चल कर उसने अनेक धार्मिक तथा पौराणिक ग्रन्थ पढ़ डाले! अध्यापन-शास्त्र में छात्रों में शिक्षा के प्रति रुचि पैदा करने का एक तत्व बताया जाता है। मेरी माता के बारे में यह रुचि पदा करने का काम उस पुस्तक-विक्रेता ने किया।

ऐसा ही एक सूक्ष्म विचार एक बार एक नवयुवक को अनुग्रहीत कर गया। और उसके बारे में अन्यथा असाध्य साबित हुई बात सहजसाध्य बन गई। बात यह हुई—

जब तक वह युवक स्कूली छात्र था, बदकिस्मती से सुलेखन—good handwriting—के छात्रोपयोगी गुण ने उसकी ओर कभी फूटी आँख से नहीं देखा! उसके अध्यापक उसके लिखे हुए जवाब, ग़लत न होते हुए भी, प्रसन्नता से पढ़ नहीं पाते, उसकी लिखावट देखकर नाक-भौं सिकोड़ते। जब वह मैट्रिक की कक्षा में पहुँचा तब उसके अध्यापकों ने, उसकी अन्यथा संतोषजनक पढ़ाई को देखकर तथा युनिवर्सिटी में उसके चमकने की और स्कूल का नाम रोशन हो जाने की उम्मीद रखकर अक्षर-सुधार के बारे में खूब उपदेश दिया। मगर कोई कामयाबी नहीं मिली, सुन्दर, सुपठनीय, मनलुभावनी लिखावट की बात उसके गले नहीं उतरी। युनिवर्सिटी की परीक्षा में उसे ऊँची श्रेणी के गुण तो मिले, लेकिन खराब लिखाई के फलस्वरूप कुछ गुणात्मक हानि पहुंचे बिना नहीं रही।

संयोग की बात देखिए कि मैट्रिक हो जाने के तुरन्त बाद, यानि दूसरे ही वर्ष, खुद उसी को स्कूल-टीचर बनकर प्राइमरी स्कूल के नन्हे-नन्हे बच्चों के सामने अध्यापक की भूमिका में पेश आना पड़ा। अब उसकी भूमिका छात्र की नहीं, टीचर की थी, दूसरों को अक्षर-सुधार का उपदेश देने वाले की थी। खुद उसकी लिखाई सामने बैठने वाले छात्रों की दृष्टि से अनुकरणीय तो हरगिज़ नहीं थी और इस

असलियत का भान उसे ज़रूर था। अब क्या किया जाए? उसने सोचा—मैं स्वयं ब्लैक-बोर्ड पर खराब लिखाई प्रस्तुत करूँ तो छात्रों को अक्षर-सुधार का उपदेश देने का अधिकारी कैसे होऊँ?

बस, यही छोटा-सा विचार उस युवक की लिखावट में सुधार कर लाने में कारगर हुआ! शिक्षक की हैसियत से अपनी प्रतिष्ठा का निर्माण करने का सवाल भी उसके सामने रहा होगा। और यह जानकर मुझे ग़ज़ब का आश्चर्य हुआ कि उस नवयुवक अध्यापक के छात्रों पर उसकी लिखाई को देखकर अप्रसन्न होने की या नाक-भौं सिकोड़ने की आफ़त कभी भी नहीं आई! इतना ही नहीं, उस स्कूल के प्रधानाध्यापक समेत सभी ने उसके सुन्दर लेखन की नित्य सराहना ही की। आप इस पर भरोसा करें या न करें, मगर मैंने यह बात अपनी आँखों से देख ली है और उस नव अध्यापक के सुन्दर लिखावट का धनी होने की बात नित्यप्रति कानों पर आती रही है।

ज़रा गहराई से सोचें तो हमें मालूम हो जाएगा कि हमारे सभी क्रिया-कलापों का उत्स हमारे विचारों में होता है और इस विचार की शक्ति बड़ी प्रचण्ड होती है। इस शक्ति को अनेकानेक विधायक कामों में लगाकर हम ज़रूर लाभान्वित हो सकेंगे, न केवल व्यक्तिगत मामलों में ही अपितु सामूहिक समस्याओं में भी। जहाँ भूमि के छोटे-से टुकड़े के लिए लोग एक-दूसरे का गला तक घोंटने पर आमादा हो जाते हैं, वहाँ आचाय विनोबा भावे के भूदान के एक अनोखे विचार ने कितने पारस्परिक प्रेम और सामञ्जस्य को जताकर भूहीन किसानों की समस्या हल कर दी!

अगर हमारा समाज विवेकी बने, उसका सदसद्विवेक नित्य जागृत रहे और वह हर क्षण उस पर अमल करने की ठाने तो दुष्ट जन सज्जन बनेंगे, दुराचारी सदाचारी बनेंगे, अर्थ-संकट की झुलसाने वाली आग शीतल बनेगी, प्रौढ़-शिक्षा-प्रसार पर लाखों-करोड़ों रुपया खर्च नहीं करना पड़ेगा, शिक्षकों के प्रशिक्षण की समस्या समस्या नहीं रहेगी, भूमि और मकान की समस्या को लेकर असहाय ज़रूरतमन्दों के जीवन के साथ खिलवाड़ नहीं होगा और सुख-अमन की ज़िन्दगी का जनसाधारण का सपना स्वप्न नहीं रहेगा!

—c/o सुहास पेठे, स्टेट बैंक आफ इंडिया, पो० उरुण-इस्लामपुर, जिला सांगली, (महाराष्ट्र) – 415 409

(पृष्ठ ३९ का शेष)

अतिरिक्त जो भाव अनियमित रूप से यदा-कदा आकर प्रवहमान जीवनधारा में गति देकर लौट आते हैं वे संचारी भाव या व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया आदि सहित इनकी संख्या तेतीस मानी गयी है तथा स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च आदि सात्त्विक भावों की संख्या आठ स्वीकार की गई है।

चित्तवृत्ति के उद्भव हेतु विषय को विभाव कहते हैं। ये विभाव आलम्बन और उद्दीपन दोनों प्रकार के होते हैं। काव्य में नायक-नायिका आलम्बन होते हैं और रस को उद्दीप्त करने वाली नायक-नायिका की चेष्टाएं उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आती हैं। विभिन्न कारणों से हृदय में उद्‌बुद्ध स्थायी भावों को बाहर प्रकाशित करने वाले अंगों (भ्रू-विक्षेप, कटाक्ष आदि) के व्यापारों को अनुभाव कहते हैं। लौकिक जीवन में अंगादि व्यापार कार्य समझे जाते हैं किन्तु काव्य में इन्हें अनुभाव कहा जाता है।

भरत ने इन उनचास भावों को काव्य-रस की अभिव्यक्ति का कारण माना है। सामान्य गुण के योग से इन्हीं भावों से प्रेक्षक के हृदय में रसोदय होता है। भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त आदि आचार्यों द्वारा प्रवर्तित 'साधारणीकरण' का मूल सिद्धान्त 'सामान्य गुणयोग' की कल्पना में ही अन्तर्निहित है। इसी सिद्धान्त के द्वारा विशिष्ट एवं व्यक्तिपरक भावों का साधारणीकरण होने पर रस-प्रतीति होती है।

इस प्रकार आचार्य भरत का प्रधान तथा गौण भावों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि २०वीं सदी की वैज्ञानिक कसौटी पर भी खरा उतरता है।

—प्राध्यापक, साधु आश्रम, होश्यारपुर

स्वास्थ्य-चर्चा—१६

हमारा भोजन—२

डॉ० राजेन्द्रसिंह बेदी, एम० डी०

भाषान्तरकार—प्रभाकिरण शर्मा

(५) विटामिन-बी—कॉम्प्लैक्स

पानी में घुलने वाले विटामिनों के वर्ग को विटामिन-बी-कॉम्प्लैक्स के नाम से जाना जाता है। इन्हें एक वर्ग में इसलिए इकट्ठा गिना जाता है क्योंकि इनकी प्राप्ति के स्रोत एक समान हैं, चाहे उनकी रासायनिक बनावट एक दूसरे से पृथक् है। इनमें से अधिकतर विटामिन मनुष्य-शरीर के ऊतकों (tissues) को बनाने की रासायनिक क्रिया के लिए आवश्यक हैं। दूसरे शब्दों में वे मनुष्य-शरीर के ऊतकों के भिन्न-भिन्न कार्य करने में सहायक हैं। इस वर्ग के महत्त्वपूर्ण अंग ये हैं—

(a) विटामिन-बी$_1$, थियामिन (THIAMIN)

यह विटामिन साधारण रूप से दालों, सूखे मेवों, लिवर और अंकुरित अनाजों में पाया जाता है। मक्खन, सब्जियों और तेलों में यह नहीं पाया जाता। इसकी कमी उन व्यक्तियों में पाई जाती है जोकि या तो मशीनी चावल खाते हैं या अधिक शराब पीते हैं। इसके अभाव से सारे शरीर में सूजन हो सकती है, शरीर के निचले अंगों में कमज़ोरी, हाथ-पाँव में जलन या दिल की बीमारी हो सकती है। इस बीमारी को बेरी-बेरी (Beri-Beri) कहते हैं।

(b) नाइयासिन (NIACIN)

पानी में घुलने वाले इस विटामिन के स्रोतों में से अनाज, दालें तथा कॉफी पर्याप्त समृद्ध हैं। मक्की और दालों में, जिनका छिलका उतार दिया गया हो, नाइयासिन की बहुत ही कम मात्रा रह जाती है। इसके अभाव से चमड़ी में परिवर्तन हो सकता है, जिस से शरीर के खुले हिस्से लाल हो जाते हैं, जैसे चेहरा और गर्दन, और उनमें जलन पैदा हो जाती है। इसके अतिरिक्त, जीभ में लाली, सूजन और दर्द होने लगती है। इससे कमज़ोरी, बदहज़मी और संग्रहणी हो जाती है। बीमार व्यक्ति कमज़ोर और चिड़चिड़ा हो जाता है। उस में दूसरे मानसिक परिवर्तन भी हो सकते हैं।

(c) राइबोफ़्लेविन (RIBOFLAVIN)

पनीर, अण्डों, हरी सब्जियों तथा दूध से राइबोफ़्लेविन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। इसकी कमी के कारण मुंह में छाले पड़ सकते हैं।

(d) विटामिन-बी$_6$, पिरोडोक्सिन (PYRIDOXINE)

दालों, अण्डों और सब्जियों, इन सभी में, पर्याप्त मात्रा में पिरोडोक्सिन पाई जाती है। इसके अभाव में मुंह के पकने और हाथ-पैरों के सुन्न होने तथा उनमें सनसनाहट होने की संभावना हो सकती है।

(e) विटामिन-बी$_{12}$

यह पशुओं से प्राप्त खाद्य-पदार्थों में अधिकतर पाया जाता है। इसके अभाव से खून की एक विशेष प्रकार की कमी तथा रीढ़ की हड्डी की बीमारी हो जाती है।

(६) विटामिन-C (ASCORBIC ACID)

यह पानी में घुल जाने वाला एक अन्य महत्त्वपूर्ण विटामिन है जोकि विशेष रूप से CITRUS FRUITS (नींबू, संतरा, मालटा इत्यादि) और हरी सब्जियों में पाया जाता है। पशुओं से प्राप्त खाद्य पदार्थों में यह बहुत ही कम मात्रा में होता है। आग पर पकाने से यह विटामिन समाप्त

हो जाता है। यह विटामिन किसी किस्म की शारीरिक या दिमागी थकावट को दूर करने के लिए अति आवश्यक है। इसके अभाव से एक बीमारी, जिसे स्कर्वी (SCURVY) कहते हैं, हो जाती है, जिसमें मसूड़े फूल जाते हैं, नर्म पड़ जाते हैं, उनमें दर्द होने लगती है और जल्दी खून बहने लगता है। इससे दांतों और मसूड़ों के बीच पीप भी पड़ सकती है और सांस गन्दा हो जाता है। चमड़ी या जोड़ों आदि से खून भी बह सकता है। इससे ज़ख्म जल्दी ठीक नहीं होता और नाक से खून बहने लगता है। बहुत छोटे बच्चों में जोड़ भी दर्द करने लग जाते हैं।

कुछ डाक्टर सम्भवतः आपको बताएंगे कि एक साधारण स्वस्थ आदमी जो कि पर्याप्त सन्तुलित भोजन खाता हो उसे विटामिन की आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु ऐसा हर समय नहीं रहता क्योंकि कोई भी दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते और हर एक की अपनी-अपनी आवश्यकताएं और कमियां होती हैं। इसलिए एक भोजन जो कि एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त हो, सम्भवतः दूसरे के लिए पर्याप्त न हो। इसके अतिरिक्त इनमें से बहुत से विटामिन जैसे बी-कॅम्प्लैक्स और विटामिन-सी, आग पर पकाने से नष्ट हो जाते हैं। इसलिए ऐसी साधारण शिकायतों के लिए जैसे कि जोड़ों का दर्द, थकावट, भूख की कमी, हाथों और पाँवों की जलन, मुँह में छाले, कब्ज, जुकाम तथा संग्रहणी इत्यादि के लिए अपने डॉक्टर से सलाह लेनी चाहिए जो उन्हें अच्छी तरह देखने के बाद उचित विटामिन की पूर्ति के लिए सलाह देगा।

—9, बैंक कॉलोनी, पटियाला—147 001

मीठा ज़हर

तारिक असलम 'तस्नीम'

जब से
आशाओं के टूटे हैं पंख
सपनों की महकती डालियों पर
आ बैठा है
नुकीले पंजों वाला एक चील !
समय की हथेली पर
अनुभव ने जन्म दिया है
एक नया सूरज
छोटी पड़ने लगी हैं अंधेरे की सीमाएं
किन्तु फिर भी
ठंडी चांदनी रात भी लगती है
जेठ सी तपती दोपहर
क्योंकि
आसपास के माहौल में घुल चुका है
व्यवस्था-जनित मीठा ज़हर
संभावनाओं की पीठ में ठुंका है कील !
रोज़-ब-रोज़
सफ़र के बावजूद
सिर्फ़ इतना एहसास होता है
आदमी
जीवन की राहों पर अभी तक चला है
सिर्फ़ एक मील !

प्लाट/६, हारुन नगर, फुलवारी शरीफ रेलवे स्टेशन, (पटना)—८०१ ५०५

बाल-भारती

आइनस्टाईन और उनका आकर्षक व्यक्तित्व—४

डॉ० त्रिलोक तुलसी

पैसे के मामले में आइनस्टाईन कितने कोरे थे, इसकी एक रोचक कहानी अक्सर सुनाई जाती है। अमरीका के प्रिंसटन विश्वविद्यालय ने उन्हें निमन्त्रण दिया कि वे वहां आकर रहें और अपनी इच्छानुसार कार्य करते रहें। अपना वेतन भी वे स्वयं ही नियत कर लें। आइनस्टाईन सोच कर बोले—"तीन हज़ार डालर प्रति वर्ष।" विश्वविद्यालय का प्रतिनिधि इतनी छोटी रकम सुनकर दंग रह गया। उसके आश्चर्य को ग़लत समझ कर आइनस्टाईन बोले—"नहीं, नहीं, इससे कम नहीं होगा। इससे कम में मेरी गुज़र भला कैसे होगी?" इस पर प्रतिनिधि हंस कर बोला, "छोड़िए, वेतन की बात में आपकी पत्नी से तय कर लूंगा। और सोलह हज़ार डालर पर फैसला हुआ।

जीवन में आइनस्टाईन को बहुत ख्याति मिली, बहुत प्रशंसा मिली, किन्तु इससे वे सदा घबराते रहे, क्योंकि इनके कारण व्यक्ति कार्य से विमुख हो जाता है। "प्रशंसा व्यक्ति को बिगाड़ देती है। रुक जाने और अपनी प्रशंसा सुनते रहने को मन ललचा उठता है। बचने का एक ही तरीका है। काम करते जाओ।"

व्यक्ति की प्रशंसा को वे आवश्यक नहीं मानते थे। "लम्बी खोज के बाद इस रहस्यपूर्ण जगत् के सौंदर्य की यदि एक झलक मिल जाए तो यह अपने आप में यथेष्ट पुरस्कार है, और कोई प्रशंसा, कोई ख्याति नहीं चाहिए।"

एक समारोह में इनका अभिनन्दन हुआ तो अपने भाषण में इन्होंने कहा था, "आप लोगों ने मेरे बारे में जो कुछ कहा है उसके लिए मैं आप सब का धन्यवाद करता हूँ। यदि मैं आप की बातों को सच भी मान लूं तो इसका मतलब होगा कि मेरा दिमाग़ खराब हो गया है।" अभिनन्दन पाने वाले कितने नेता अपनी बढ़ी-चढ़ी प्रशंसा को सच मान कर फूल जाते हैं, यह हम रोज़ देखते हैं।

ख्याति अपने साथ एक और समस्या भी लेकर आती है—जाने, अनजाने लोगों के पत्रों के रूप में। आइनस्टाईन यदि उन पत्रों को पढ़ने बैठ जाते जो उन्हें रोज मिलते थे, तो सारा दिन उन्हीं को पढ़ते रहते, अपना काम न कर पाते। अतः वे पत्र एक तार में नत्थी होते रहते। "जब यह तार भर जाती है तो आप क्या करते हैं।" एक मित्र ने पूछा। "जला देता हूँ"—आइनस्टाईन ने सादगी से जबाव दिया।

सिनेमा के सितारों और तारिकाओं के लिए अपने प्रशंसकों के ये पत्र बहुत महत्त्व रखते हैं—अपनी सफलता की कसौटी वे उस पुलिंदे के वज़न को मानते हैं जो डाकिया रोज़ उनके द्वार पर फैंक जाता है। डाकिया उनके लिए वह देवदूत है जो उन्हें रोज़ सूचना देने आता है कि वे अभी आकाश की ऊँचाइयों में ही चमक रहे हैं, नोच कर ज़मीन पर नहीं फैंके गए हैं। किन्तु आइनस्टाईन को यह डाकिया यमदूत नज़र आता था। "मैं प्रायः एक दुःस्वप्न देखता हूँ। मैं नरक की भट्ठी में जल रहा हूँ। जब भी आग बुझने लगती है तो एक डाकिया

आकर उसमें चिट्ठियों का एक मोटा पुलिंदा झोंक जाता है।"

लोग सत्ता पाने को व्याकुल रहते हैं; कुर्सी के पीछे अंधे घोड़े की तरह भागते हैं, किन्तु आइनस्टाईन को एक देश का राष्ट्रपति पद पेश किया गया तो उन्होंने ठुकरा दिया। 'ठुकराया' शब्द शायद यहां ठीक न होगा, क्योंकि इससे कुछ अशिष्टता का आभास मिलता है। आइनस्टाईन का इन्कार का ढंग भी उनकी महानता को और उनके व्यक्तित्व की बुनियादी शालीनता को प्रकट करता है। आइनस्टाईन को इज़राइल के राजदूत का फोन मिला कि लोग उन्हें इज़राइल का राष्ट्रपति बनाना चाहते हैं। वे उनकी प्रार्थना मान लें। इस अप्रत्याशित प्रार्थना को सुन कर आइनस्टाईन असमंजस में पड़ गए। हां कहें या ना, ऐसी कोई दुविधा नहीं थी। सोच इस बात की थी कि इन्कार कैसे किया जाए ताकि राजदूत को और इज़राइल के लोगों को ठेस न पहुँचे। और बहुत ही नम्रता के साथ क्षमा मांगते हुए, उन्होंने अपनी लाचारी प्रकट कर दी।

आइनस्टाईन की अद्भुत समरसता की पराकाष्ठा देखनी हो तो दो उदाहरण देखिए। एक का सम्बन्ध उनकी सफलता के सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण से है और दूसरे का उनके जीवन के सर्वाधिक शोकपूर्ण क्षण से।

१९१९ में सापेक्षता-सिद्धांत की बुनियादी परख करने के लिए एक बहुत बड़ा प्रयोग किया जा रहा था। सारे संसार की आंखें इसकी ओर लगी थीं। दुनिया भर के समाचार पत्रों में इसे खूब उछाला गया था। वस्तुतः इसी प्रयोग के कारण आइनस्टाईन को विश्वव्यापक ख्याति मिली।

मामला यूँ था। प्रकाश-किरण सीधी चलती है, यह सब जानते हैं। आइनस्टाईन के सिद्धांत का एक निष्कर्ष यह निकलता था कि प्रकाश-किरण जब किसी बहुत भारी वस्तु के पास से गुजरेगी तो उस की ओर झुक जाएगी। यह निष्कर्ष इतना असंगत प्रतीत हो रहा था कि बहुत से वैज्ञानिक इसी के आधार पर सापेक्षता-सिद्धान्त को रद्द कर देना चाहते थे। आखिर इसे परखने की एक व्यावहारिक योजना बनाई गई। पूर्ण सूर्यग्रहण लगने पर नक्षत्रों से आने वाली जो प्रकाश किरणें सूर्य के पास से गुजरेंगी वे भारी सूर्य की ओर झुक जानी चाहिएं — यदि वे नहीं झुकतीं तो आइनस्टाईन का सिद्धान्त गलत है। एक समुद्री जहाज में वैज्ञानिकों की एक टोली वैज्ञानिक उपकरणों से लैस होकर खुले समुद्र में उस जगह पहुँची जहां पूर्ण ग्रहण दिखाई देने वाला था। ग्रहण लगा, नक्षत्रों से आने वाली किरणों का कोण मापा गया। पता चला कि ये प्रकाश किरणें सूर्य की ओर उतना ही झुक रहीं हैं जितने की पूर्वसूचना आइनस्टाईन का सिद्धान्त दे रहा था। अगले ही दिन संसार भर के समाचार पत्रों में आइनस्टाईन के चित्र छपे और उस पर मोटी सुर्खी जमी थी: वह मनुष्य जिसने प्रकाश को झुका दिया।

उस समय जब संसार भर में यह उत्तेजना फैली हुई थी तो स्वयं आइनस्टाईन क्या कर रहे थे? अपने कमरे में बैठे हुए वे एक अन्य वैज्ञानिक को गणित के आधार पर यह समझाने का प्रयत्न कर रहे थे कि उनका सिद्धान्त ठीक है। इस बीच एक तार आई, आइनस्टाईन ने पढ़ी, चुपचाप मेज़ पर रख दी और फिर अपने मुलाकाती को समझाने में लग गए। किन्तु वह मान नहीं रहा था और अंत में बड़ी दृढ़ता से बोला: "आप कुछ भी कहें, प्रकाश-किरण नहीं झुकेगी।" आइनस्टाईन ने चुपचाप वह तार का कागज़ उसे थमा दिया। यह तार प्रयोग करने वालों ने भेजी थी। उस पर लिखा था: बधाई हो। प्रकाश किरण झुक गई।

यह पढ़ कर वह वैज्ञानिक एक क्षण को तो स्तंभित रह गया, फिर उत्तेजना में उछल पड़ा और बोला: "आप ने उसी समय क्यों नहीं बताया, तार चुपचाप क्यों रख दी?" उत्तर

मिला : "इस तार से क्या अंतर पड़ । मैं पहले ही जानता था कि मैं ठीक हूँ।" "और यदि कहीं प्रयोग से पता चलता कि आप ग़लत हैं?" "तो प्रयोग ग़लत होता"—आश्वस्त उत्तर मिला।

आइनस्टाईन के जीवन का सबसे शोक-पूर्ण क्षण वह था जब उनकी पत्नी ऐल्सा की मृत्यु हुई। ऐल्सा की देखभाल पर वे ऐसे आश्रित थे जैसे एक निरीह बच्चा अपनी मां पर होता है। उससे वे कितना प्रेम करते थे, यह स्वयं ऐल्सा को भी तब पता चला था जब वह बीमार हुई। "मेरे रोग ने उन्हें बहुत व्याकुल कर दिया है। वे ऐसे खोए हुए घूमते हैं। मैं सोच भी नहीं सकती थी कि वे मुझे इतना चाहते हैं।"

ऐल्सा की मृत्यु हो गई। कितना धक्का लगा होगा, यह वही जानते हैं। किन्तु इस धक्के को भी वे चुपचाप सह गए। लाश के पास खड़े हुए अपने एक मित्र वाल्टर्ज़ को कह रहे थे: "व्यक्ति का महत्त्व कितना कम है। व्यक्ति की अपनी परेशानियां कितनी नगण्य हैं। जीवन की हल्की-छोटी बातों को हम ज़रूरत से अधिक महत्त्व देते हैं।"

विनोद-वृत्ति—

समरस बने रहने के लिए विनोद-वृत्ति बड़ी सहायक होती है। कुछ विद्वानों के अनुसार तो मनुष्य की परिभाषा ही यह है "मनुष्य एक हंसने वाला जानवर है।"

हंसी क्या है? कोएसलर के अनुसार यह हमारे मन का सेफ़्टी वाल्व है। किसी कारण-वश हमारे मन में तनाव भर जाता है, फिर यदि यह पता चले कि यह तनाव अप्रासंगिक है, तब वह हंसी के रूप में फूट पड़ता है, बह जाता है। नहीं तो यह तनाव या तो हमें अशान्त रखता है या फिर भड़का देता है।

जिसके सामने कोई बड़ा लक्ष्य हो वह छोटी-छोटी बातों को उपेक्षा करता है। छोटी-छोटी बातों से उत्पन्न तनाव को वह अप्रासंगिक समझ कर अपनो हंसी में छितरा देता है।

—नया कृष्णनगर, होश्यारपुर

एक ही पहिचानबो

जोगेन्द्र लाल

अभिलाषा-अंकुर

ा कर तुमने मुझ को
ा प्रलोभन, कहा मांग ले—
सुख स्पर्शण।
अनिष्ट, और कामना—
न होंगे, नीरज, धर्म, प्राण
सुख हमें न चाहिए,
ओछा पथ-प्रदर्शन।
त्ति, देह, आडम्बर मिश्रित नेह,
ोथा धन न हो मेरा,
ाषा अंकुर ही न उपजे।

ी विभाग, गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर

संस्थान-समाचार

अभ्यागत—पिछले दिनों ये महानुभाव संस्थान में पधारे—

महामहिम पंजाब राज्यपाल श्री के. टी. सतारावाला, श्रीमती सतारावाला, श्री एस० आर० बंगड़, होश्यारपुर जिलाधीश; श्री मुरारीलाल कक्कड़, चण्डीगढ़; श्री सुरेशचन्द्र वात्स्यायन, लुधियाना; पं० देवीदास वाशिष्ठ, श्री ब्रजभूषण और श्री निरंजनसिंह, पंजाब विश्व-विद्यालय, चण्डीगढ़ तथा विनोद भल्ला, दिल्ली से।

विशेष दान—

श्री मोहन लाल, जालन्धर, ५१ रु०, श्रीमती सुशीला भण्डारी, १०० रु०, श्रीमती सुशीलावती सूद, होश्यारपुर, १०० रु०, सर्वश्री अनन्तराम शामवीर, होश्यारपुर, १०० रु०, श्रीमती इन्दुमती सैनी, जालन्धर, १०१ रु०, श्री वैष्णोदास महाजन, होश्यारपुर, १०० रु०, श्रीमती शकुन्तला देवी, होश्यारपुर, १०१ रु०, श्री संसारसिंह, माहिलपुर, ५० रु०, डॉ० सी. बी. शर्मा, पठानकोट, १०० रु०, श्रीमती सुशीला देवी बीर, दिल्ली, १०१ रु०, श्री शिवकुमार, १०० रु०, श्रीमती शान्ता सेठी, नई दिल्ली, १०० रु०।

नये सदस्यों से शुल्क-प्राप्ति—

श्रीमती आशा चौधरी, होश्यारपुर, ५०० रु०, कु० शारदा सूद, होश्यारपुर, ५०० रु०।

अन्य-प्राप्ति—

श्री एस. आर. सूद, देहरादून, ५०० रु०, सर्वश्री मूलचन्द खरैतीराम न्यास, नई दिल्ली, ५०० रु०।

शोक-स

संस्थान के आजीवन सदस्य श्री दयाच पर, जो कि दि० १६-६-८४ को हुआ; संस्थान स की सुपुत्री कु० सुमन के दुःखद निधन पर, जो सन्तप्त परिवारों के प्रति 'विश्व-ज्योति' परिवा की जाती है।

बधाई :

संस्थान के डायरैक्टर-प्रोफैसर

प्रो० एस. भास्करन् नायर, जो अब तक संस्थान के आदरी संचालक थे, ५ दिसम्बर, १९८४ से संस्थान के पूर्णकालिक डायरैक्टर-प्रोफैसर नियुक्त कर दिये गये हैं। विश्वज्योति-परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक बधाई!

शुभ विवाह—

संस्थान के आजीवन सदस्य श्री अमरनाथ अग्रवाल, उदयपुर को उनकी सुपुत्री कु० सरिता के शुभ विवाह पर जो कि दिनांक २६ ११. १९८४ को मुबारिकपुर (पटियाला) में सम्पन्न हुआ, श्रीमती सुदर्शन आनन्द को उनके सुपुत्र श्री बृज के शुभ विवाह पर जो कि दिनांक २. १२. १९८४ को मेरठ में सम्पन्न हुआ, संस्थान एवं विश्वज्योति-परिवार की ओर से हार्दिक बधाई!

विश्व-सत्संग—

रविवासरीय सत्संग में यथावत् हवन-यज्ञ, भजन, गीतापाठ एवं विविध विषयों पर रघुनाथचन्द्र जी शास्त्री के प्रवचन होते रहे।

आज का विचार—

सदा की भांति गतमास भी शास्त्रीय सूक्तिस्वरूप 'आज का विचार' संस्थान के मुख्य द्वार पर लिखा

स बीच एक तार आई, आइनस्टाईन चुपचाप मेज़ पर रख दी और फिर ाकाती को समझाने में लग गए। मान नहीं रहा था और अंत में बड़ी ला : "आप कुछ भी कहें, प्रकाश-केगी।" आइनस्टाईन ने चुपचाप कागज़ उसे थमा दिया। यह तार ालों ने भेजी थी। उस पर लिखा ी। प्रकाश किरण झुक गई। र वह वैज्ञानिक एक क्षण को तो या, फिर उत्तेजना में उछल पड़ा "आप ने उसी समय क्यों नहीं चुपचाप क्यों रख दी ?" उत्तर

खुली खिड़की से

१. भोपाल की गैस दुर्घटना में अनाथ हुए बच्चों की रक्षा

भोपाल गैस दुर्घटना में हज़ारों व्यक्तियों की मृत्यु हो गई है और बहुत सारे बच्चे अनाथ हो गये हैं। इस दुःखद स्थिति को देखते हुए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली द्वारा संचालित फ़िरोज़पुर आर्य अनाथालय ५० अनाथ बच्चों के भरण-पोषण और शिक्षा का दायित्व उठाने के लिए तैयार है। भरण-पोषण और शिक्षा सब निःशुल्क होगी।

मेरी समस्त आर्य (हिन्दू) जनता से प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में जो भी आर्थिक सहायता देना चाहें वे चैक/ड्राफट अथवा मनीआर्डर द्वारा आर्य अनाथालय, फ़िरोज़पुर कैण्ट या आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली भेज सकते हैं।

—रामनाथ सहगल, मंत्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली—१

२. यात्रा-सुविधा

स्वामी दयानन्द जन्म-स्थान टंकारा में १६-१८ फरवरी, १९८५ तक ऋषिमेला मनाया जा रहा है। सभी आर्य-संस्थाएं सम्मिलित रूप से अपनी-अपनी बसें करके वहां पहुँचें।

रेल द्वारा यात्रा करने के लिए सीटें सुरक्षित करवाने की व्यवस्था भी की गई है। १३-२-८५ तथा १४-२-८५ को दिल्ली से अजमेर जाने वाली और १८-२-८५ तथा १९-२-८५ को अजमेर से दिल्ली आने वाली गाड़ियों में सीटें सुरक्षित हो सकती हैं। इच्छुक यात्री नाम, आयु, पता, आदि विवरण के साथ १५ जनवरी, १९८५ तक २०० रुपये भेज दें।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिये—

—मंत्री, टंकारा सहायक समिति, कार्यालय आर्यसमाज, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली—१

३. भूख से संघर्ष : एक मूलगामी समाधान की ज़रूरत

हाल ही में सम्पन्न अफ्रीकी एकता संगठन की सभा के अधिवेशन में नोट किया गया है कि २७ अफ्रीकी देश पूरी तरह बाहर से खाद्य-आपूर्ति पर निर्भर हैं। उनको, जिनकी भ[illegible]
है, बचाने के लिए [illegible]

...JYOTI R. N. No. 1/57 Regd. No. NW/HSP-1

संस्

कु० शा...

अन्य-प्राप्ति —

श्री एस. आर. सूद, देहरादून, ५०० रु०, सर्वश्री ... मूलचन्द खरैतीराम न्यास, नई दिल्ली, ५०० रु०। ...दी

शोक-स...

संस्थान के आजीवन सदस्य श्री दयाचन्... पर, जो कि दि० १६-९-८४ को हुआ; संस्थान स... की सुपुत्री कु० सुमन के दुःखद निधन पर, जो ... सन्तप्त परिवारों के प्रति 'विश्व-ज्योति' परिवा... की जाती है।

है। इस बीच एक तार आई, आइनस्टाइन ने पढ़ी, चुपचाप मेज़ पर रख दी और फिर अपने मुलाकाती को समझाने में लग गए। किन्तु वह मान नहीं रहा था और अंत में बड़ी दृढ़ता से बोला: "आप कुछ भी कहें, प्रकाश-किरण नहीं झुकेगी।" आइनस्टाईन ने चुपचाप वह तार का कागज़ उसे थमा दिया। यह तार प्रयोग करने वालों ने भेजी थी। उस पर लिखा था: बधाई हो। प्रकाश किरण झुक गई।

यह पढ़ कर वह वैज्ञानिक एक क्षण को तो स्तंभित रह गया, फिर उत्तेजना में उछल पड़ा और बोला: "आप ने उसी समय क्यों नहीं बताया, तार चुपचाप क्यों रख दी?" उत्तर